nbt.india
एकः सूते सकलम्

पुस्तक संस्कृति

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष - 6 ◆ अंक - 4 ◆ जुलाई- अगस्त 2021 ◆ मूल्य ₹40.00

नेताजी सुभाष चंद्र बोस विशेषांक

● इतिहास बदलने वाले वे शब्द ● कैसे पहुँचे थे नेताजी जर्मनी ● देश की आजादी का महानायक

● आजादी की असली लड़ाई ● सोन-घाटी में जीवंत हैं नेताजी की स्मृतियाँ

वर्तमान महामारी में नवाचार और कौशल के अवसर : शारीरिक और मानसिक समस्याएँ

एसोचैम और महर्षि दयानंद यूनिवर्सिटी, रोहतक के संयुक्त तत्वावधान में 'वर्तमान महामारी में नवाचार और कौशल के अवसर : शारीरिक और मानसिक समस्याएँ' विषय पर एक वेबिनार आयोजित किया गया, जबकि राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने नॉलेज पार्टनर की भूमिका का निर्वहन किया। उद्घाटन भाषण में, श्री कुंवर शेखर विजेंद्र, सह-अध्यक्ष, एसोचैम नेशनल काउंसिल ऑन एजुकेशन एंड चांसलर ने महामारी से निपटने में लोगों की मदद करने में शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों और राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत जैसे संस्थानों की भूमिका के महत्व पर जोर दिया।

इस अवसर पर न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने 'स्वास्थ्य ही धन है' को विस्तारित करते हुए कहा कि वर्तमान समय ने इसका एक नया अर्थ विकसित किया है जहाँ स्वास्थ्य न केवल शारीरिक, बल्कि मानसिक और आध्यात्मिक भी है। देश की सामूहिक शक्ति और प्रबल इच्छाशक्ति ही इस शारीरिक और मानसिक समस्या से छुटकारा दिला सकती है।

वेबिनार में देश भर के शिक्षाविदों, कुलपतियों, सरकारी और निजी विश्वविद्यालयों, संस्थानों, कॉलेजों और छात्रों ने भाग लिया।

ऑनलाइन पुस्तक प्रकाशन प्रशिक्षण

"प्रकाशकों के लिए, प्रकाशन केवल एक पेशा नहीं है, बल्कि एक मिशन भी है।" उक्त उद्गार राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा ने ऑनलाइन पुस्तक प्रकाशन प्रशिक्षण के समापन सत्र के अवसर पर व्यक्त किए। 20 फरवरी से 16 मई, 2021 तक चलने वाला यह ऑनलाइन सत्र न्यास और अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी यूनिवर्सिटी, भोपाल के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित किया गया था। उन्होंने कहा कि प्रकाशक संदेशवाहक के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो लेखकों की राय को समाज के सामने लाते हैं।

इस अवसर पर न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने कहा कि प्रकाशन के बहुत अवसर हैं। कोई भी प्रिंटिंग, मार्केटिंग, एडिटिंग जैसे क्षेत्र को चुन सकता है और उसमें महारत हासिल कर सकता है। हमें नैतिक मूल्यों को अपनाने और गुणवत्तापूर्ण सामग्री लाने की जरूरत है। कार्यक्रम के अंत में न्यास की मुख्य संपादक व संयुक्त निदेशक श्रीमती नीरा जैन ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने शुरू की कोरोना हेल्पलाइन

संपूर्ण विश्व आज कोरोना महामारी के चपेट में है। वहीं भारत भी इस महामारी से उबरने की पुरजोर कोशिश कर रहा है, लेकिन कोविड-19, बचाव, निदान और महामारी के दौरान अपने आपको सकारात्मक कैसे रखें, जैसे प्रश्न अभी भी दिलोदिमाग में बने हुए हैं। इन सभी प्रश्नों पर जानकारी देने के लिए राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने एक हेल्पलाइन जारी की है जिसमें लोग जाने-माने मनोवैज्ञानिकों व परामर्शदाताओं से बात कर कोविड-19 से संबंधित अपने सवालों के जवाब पा सकते हैं।

युवा लेखकों के लिए प्रधानमंत्री की मेंटरशिप योजना

'आजादी के अमृत महोत्सव' कार्यक्रम के अंतर्गत प्रधानमंत्री द्वारा युवा लेखकों के लिए मेंटरशिप योजना शुरू की गई है जिसका उद्देश्य नवोदित युवा लेखकों (30 वर्ष और उससे कम) का मार्गदर्शन करना है। यह प्रतियोगिता 01 जून से 31 जुलाई, 2021 के मध्य आयोजित की जा रही है। इसमें 75 लेखकों का चयन अखिल भारतीय प्रतियोगिता द्वारा किया जाएगा। इसके अंतर्गत अज्ञात नायक, स्वतंत्रता सेनानी, राष्ट्रीय आंदोलन की गाथा पर अंग्रेजी के अलावा भारत की 22 कार्यालयी भाषाओं में सामग्री भेजनी होगी। चुने गए युवा लेखकों के हुनर को तराशन के साथ-साथ उन्हें छह महीने तक रु. 50,000/- प्रति माह छात्रवृत्ति दी जाएगी। चयनित लेखकों की घोषणा 15 अगस्त, 2021 को की जाएगी। इस महत्वाकांक्षी योजना में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत कार्यान्वयन एजेंसी की भूमिका निभाएगा। अधिक जानकारी के लिए न्यास की वेबसाइट पर जाएँ— www.nbtindia.gov.in।

प्रधान संपादक
प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा

संपादक
पंकज चतुर्वेदी

सहायक संपादक
दीपक कुमार गुप्ता

संपादकीय सहयोग
विजय कुमार, मोहन शर्मा

विज्ञापन एवं प्रसार
कंचन वांचु शर्मा

उत्पादन
अनुज कुमार भारती, पवन दुबे

रेखाचित्र
अरूप गुप्ता

सज्जा/डिजाइन
ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी

शब्द संयोजन/कार्यालयीन सहयोग
प्रवीन कुमार

सदस्यता शुल्क
व्यक्तियों के लिए
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

संपादकीय पत्र-व्यवहार
संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया
फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और रेक्मो प्रेस प्रा. लि., सी-59, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया फेज़-I, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित।

संपादक
पंकज चतुर्वेदी
सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

पुस्तक संस्कृति

साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी
वर्ष-6; अंक-4; जुलाई-अगस्त, 2021

>> नेताजी सुभाष चंद्र बोस विशेषांक <<

इस अंक में

संपादकीय	*प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा*	2
विरासत	**जब 'राष्ट्रनायक' ने 'राष्ट्रपिता' से आशीर्वाद माँगा**	4
आलेख	**उत्तराखंड से मिली नेताजी को प्रेरणा**—*जयसिंह रावत*	6
लेख	**इतिहास बदलने वाले वे शब्द**—*उमेश चतुर्वेदी*	9
लेख	**मुझमें राजनीतिक जागरूकता कब आई**—*एस.आर. नाथन*	12
प्रेरणा	**नेताजी सुभाष चंद्र बोस के जीवन से संबद्ध प्रेरक प्रसंग** —*अशोक कुमार श्रीवास्तव*	14
आलेख	**कैसे पहुँचे थे नेताजी जर्मनी**—*डॉ. कमल के. 'प्यासा'*	16
व्यक्तित्व	**देश की आजादी का महानायक**—*निरंकार सिंह*	19
आलेख	**आजादी की असली लड़ाई**—*प्रमोद भार्गव*	23
प्रौद्योगिकी	**नेताजी से संबंधित डिजिटल प्लेटफॉर्म**—*मोहन शर्मा*	27
आलेख	**नेताजी सुभाष चंद्र बोस पर जारी किए गए डाक टिकट**—*उमेश कुमार नीमा*	28
स्मृति	**जब आगरा के युवकों ने अपने खून से लिखकर नेताजी को बोला 'जयहिंद'**—*सर्वज्ञ शेखर*	31
शब्द ज्ञान	**आओ भारतीय भाषाएँ सीखें**	32
आलेख	**नेताजी सुभाष चंद्र बोस के पूर्वोत्तर भारत के दो सहयोद्धा**—*कविता शइकीया राजखोआ*	34
आलेख	**दस रुपये में आम पाठकों तक पुस्तकें पहुँचाने का जुनून**—*रोहित कौशिक*	37
आलेख	**सोन-घाटी में जीवंत हैं नेताजी की स्मृतियाँ**—*कृष्ण किसलय*	39
स्मृति	**मुझमें ज्योति और जीवन है**—*दिनेश पाठक*	43
पुस्तक समीक्षा		46
पुस्तकें मिलीं		62
पाठकीय प्रतिक्रिया		64

नेताजी सुभाष चंद्र बोस : भारतीय समुराई

भारत के राष्ट्रीय आंदोलन में सुभाष चंद्र बोस का व्यक्तित्व अलग ही था। वे गांधीजी के आभामंडल से अप्रभावित कर्मवीर और संघर्षशील क्रांतिकारी योद्धा थे। दर्शनशास्त्र के छात्र होने के नाते उन्होंने कलकत्ता और कैंब्रिज विश्वविद्यालयों में अध्ययन किया। विवेकानंद और अरविंद घोष की रचनाएँ पढ़ीं और उनसे प्रेरणा प्राप्त की। उन्होंने छात्र-जीवन में एक योग गुरु की तलाश में उत्तर भारत का भ्रमण किया। भारतीय नागरिक सेवा (आई.सी.एस.) में चयनित होने के बाद भी 24 वर्ष की आयु में ही त्यागपत्र देकर वे राष्ट्रीय आंदोलन के सिपाही बने। लगभग आठ वर्ष तक जेल में रहे। मातृभूमि के लिए सर्वस्व समर्पण का दृढ़ संकल्प उनकी पहचान बनी। अहिंसा और शांतिपूर्वक विरोध उनके संस्कारों में नहीं था। अंग्रेजी सत्ता को समाप्त करने के लिए दृढ़ संकल्पित बोस ने यहाँ तक कहा कि "मैं या तो पूर्ण आतंकवादी हूँ या फिर कुछ भी नहीं हूँ।" (विश्वनाथ प्रसाद : आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन पृ.सं. 391) बोस के उपरोक्त कथन में 'आतंकवाद' शब्द को प्रचलित अर्थ में नहीं लिया जाना चाहिए, अपितु इसे विद्रोही के रूप में लिया जाना चाहिए।

जिस प्रकार गांधीजी का विश्वास अहिंसा में था, उसी प्रकार बोस का विश्वास आत्मबलिदान में था। वे जन्मजात विद्रोही थे। बोस देश की आजादी के लिए कृत संकल्पित थे। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में बोस की सक्रियता सन् 1923 से प्रारंभ हुई और बहुत कम समय में उन्होंने अपना स्थान गांधीजी से अलग मार्ग अपनाते हुए बना लिया। उनके राजनीतिक विचारों ('द इंडिया स्ट्रगल' पुस्तक में संकलित) और कार्य-शैली ने भारतीय युवाओं को सर्वाधिक रूप से प्रभावित किया। भारतीय युवा बोस के दीवाने थे। यद्यपि बोस का जीवन, उनकी वैचारिक सोच और कार्यपद्धति बहुत स्पष्ट थी, तथापि इसी के कारण कुछ ऐसी स्थितियाँ निर्मित हुईं, जिन पर विचार किया जाना आवश्यक है।

जब भी सुभाष चंद्र बोस के राजनीतिक विचारों और कार्य-शैली की चर्चा होती है, गांधीजी के विचारों और उनकी कार्यपद्धति से बोस के विचारों और कार्यपद्धति की भिन्नता का प्रश्न स्वाभाविक रूप से खड़ा हो जाता है। व्यक्तिगत रूप से बोस के मन में गांधीजी के प्रति सम्मान का भाव था। 06 जुलाई, 1944 को रंगून रेडियो से प्रसारित अपने भाषण में बोस ने महात्मा गांधी को 'राष्ट्रपिता' कहा था। हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन (1938) में अध्यक्षीय भाषण देते हुए बोस ने महात्मा गांधी को भारत की स्वतंत्रता के लिए आवश्यक माना था। उनका कहना था कि "हमें भारतीय स्वतंत्रता के लिए उनकी (गांधीजी की) आवश्यकता है। इससे भी अधिक हमें मानव-जाति के हित के लिए उनकी आवश्यकता है।" बोस गांधीजी की सत्यनिष्ठा और जीवन की शुद्धता के प्रशंसक थे। गांधीजी के जनजागरण को बोस महान काम मानते थे, तथापि वे गांधीजी के विचारों और कार्यपद्धति के समर्थक नहीं थे, बोस व्यावहारिक राजनीति के समर्थक थे। उनका झुकाव वामपंथ की ओर था। अहिंसा की अतिशयता और नैतिकता पर एक सीमा से अधिक जोर देना बोस को स्वीकार नहीं था। बोस ने अहिंसक कार्यक्रमों में अविश्वास प्रकट किया। वे मानते थे कि केवल अहिंसा द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति संभव नहीं है। वे कूटनीति और सशस्त्र कार्यपद्धति के समर्थक थे। बोस जुझारू और तीव्र गति से सोचने वाले थे। उनके लिए साधन की पवित्रता अथवा अपवित्रता महत्व की नहीं थी। हर संभव तरीके से लक्ष्य की प्राप्ति उनके लिए अभीष्ट थी। वे सभी संभव तरीकों से भारत में ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ फेंकना चाहते थे। वैचारिक दृष्टि से भी बोस गांधीजी के विचारों से प्रभावित नहीं थे। 1933 में गांधीजी द्वारा आत्मशुद्धि के लिए किए गए उपवास के दौरान बोस ने विट्ठल भाई के साथ वियना में संयुक्त वक्तव्य देते हुए गांधीजी को 'असफल राजनीतिक नेता' कहा था।

गांधीजी और बोस के संबंध कभी सहज नहीं रहे। गांधीजी ने 1929 में बंगाल के अपने एक अनुयायी सतीश दास गुहा को लिखा, "सुभाष बाबू धोती पहनने वालों को कभी क्षमा नहीं करेंगे। हमें उन्हें सहना पड़ेगा। वे नहीं बदलेंगे। उनको अपने रास्ते पर जाना है और हमें अपने रास्ते पर।" अतः कहा जा सकता है कि बोस के अपने तरीके थे। उनमें हिंसा-अहिंसा की बात नहीं थी, बल्कि लक्ष्य प्राप्ति की प्रतिबद्धता थी, उसके लिए समर्पण भाव था और मार्ग में आने वाले कष्टों को हँसते हुए झेलने का निश्चय था।

कांग्रेस में रहते हुए बोस ने आजादी के लिए संघर्ष तो किया, पर गांधीजी सहित कांग्रेस के किसी नेता ने उनका साथ नहीं दिया। 1938 में कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में बोस ने 'औद्योगिक विकास समिति' का गठन किया, जिसका कार्य पाश्चात्य देशों की प्रगति की तर्ज पर भारत के लिए औद्योगिक विकास की योजना बनाना था। गांधीजी ने इसका विरोध किया। बोस ने 1939 में गांधीजी से आग्रह किया कि वे ब्रिटिश सत्ता को चेतावनी दें कि छह माह में पूर्ण स्वराज्य दे, किंतु गांधीजी ने कहा कि ब्रिटिश सरकार को अभी चेतावनी देने का समय नहीं आया है। हालाँकि सन् 1940 में कांग्रेस की कमान सँभालते ही गांधीजी ने व्यक्तिगत 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' प्रारंभ करने का निर्णय लिया।

सन् 1939 में कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन में गांधीजी के समर्थक पट्टाभि सीतारमैया को पराजित कर बोस कांग्रेस अध्यक्ष बने। यह एक विस्मयकारी घटना थी और गांधीजी की प्रत्यक्ष हार थी। पर जब निर्णयानुसार कार्यसमिति के गठन में बोस ने गांधीजी का सहयोग माँगा, तो उन्होंने सहयोग करने और परामर्श देने से मना कर दिया। परिणामतः ऐसी परिस्थिति निर्मित हुई कि बोस को अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देना पड़ा। बोस के साथ कांग्रेस का असहयोग यहीं पर नहीं

रुका। कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में लिए गए एक निर्णय का विरोध करने के मामूली कारण को आधार बनाकर उन्हें को तीन साल के लिए कांग्रेस के किसी भी निर्वाचित पद से वंचित कर दिया गया। परिणामतः उनके और कांग्रेस के बीच संबंध यहीं समाप्त हो गए। फॉरवर्ड ब्लॉक जिसकी स्थापना मई 1939 में कांग्रेस के अंदर बोस ने ही की थी, के माध्यम से उन्होंने आजादी के लिए संघर्ष किया।

बोस किन परिस्थितियों में भारत से बाहर गए। यह रोमांचक तो है ही, साहसिक भी है। बाहर जाकर उन्होंने उन शक्तियों से संपर्क किया, जो अंग्रेजों के विरोध में थीं। वे मुसोलिनी और हिटलर से मिले, पर युद्धोपरांत भारत की स्थिति को लेकर हिटलर और बोस में मतभेद भी उभरकर आए। बोस पर फासीवादी होने का आरोप भी लगा। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने उन्हें 'साम्राज्यवादी एजेंट' तक कहा। (स्वतंत्रता संग्राम के कई वर्षों के बाद इस आरोप को सखेद वापस लिया।) जर्मनी से बोस जून 1943 में जापान पहुँचे। यहाँ जापान के प्रधानमंत्री तोसो से भेंट कर भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति में जापान के सहयोग का आश्वासन प्राप्त किया और 'आजाद हिंद फौज' के साथ भारत जाने की घोषणा की।

25 अगस्त, 1943 को बोस आजाद हिंद फौज के प्रधान सेनापति बने तथा 'दिल्ली चलो' का नारा दिया। इसके बाद जिस तेजी से घटनाक्रम बदला और आजाद हिंद फौज ने जो उपलब्धियाँ प्राप्त कीं, वे गौरवशाली थीं। 21 अक्तूबर, 1943 को सिंगापुर रैली में बोस ने अस्थायी सरकार की घोषणा की। शीघ्र ही जापान, जर्मनी, इटली, बर्मा, थाईलैंड, मंचूरिया, फिलीपींस की सरकारों ने उनकी अस्थायी सरकार को मान्यता दी। 23 अक्तूबर, 1943 को ब्रिटेन और अमेरिका के खिलाफ युद्ध की घोषणा हुई। आजाद हिंद फौज ने कई स्थानों पर विजय प्राप्त करते हुए मई 1944 में कोहिमा पर कब्जा कर लिया, लेकिन विषम परिस्थितियों, प्रतिकूल जलवायु के कारण यह विजय अभियान आगे नहीं बढ़ सका। बोस भी कथित रूप से एक हवाई दुर्घटना के शिकार हुए और अगस्त 1945 में उनकी मृत्यु हो गई।

बोस और उनकी नीतियों को लेकर यह प्रश्न किया जाता है कि क्या वे फासीवादी थे? वे मानते थे कि राष्ट्रीय आंदोलन के पक्ष में विश्वव्यापी समर्थन तैयार करने के लिए विदेशों में प्रचार करने की आवश्यकता है, अतः देश से बाहर गए और इस दिशा में प्रयास किया। उस समय अंग्रेजों के विरोध में जो भी शक्तियाँ थीं, वे उनके राष्ट्राध्यक्षों से मिले। उनमें मुसोलिनी, हिटलर और जापान के प्रधानमंत्री तोसो भी थे। इस आधार पर उन्हें 'फासीवादी' कहा गया। यह सही है कि बोस का भावात्मक झुकाव फौजी संघर्ष की ओर था और वे यूरोप की राजनीति में मुसोलिनी के महत्व को स्वीकार करते थे। उन्होंने गांधी-मुसोलिनी भेंट का समर्थन भी किया।

वे फासीवादी कतई नहीं थे। हाँ, वे उग्र राष्ट्रवादी थे और उन्हें स्वतंत्रता के लिए सशस्त्र संघर्ष से कोई परहेज नहीं था। उनका विश्वास था कि अहिंसक साधनों से भारत आजाद नहीं हो सकता, पर उन्होंने साम्राज्यवाद और उसके प्रसार का कभी समर्थन नहीं किया। उन्होंने जातीय सर्वोच्चता के सिद्धांत को भी स्वीकार नहीं किया, यह सिद्धांत फासीवाद का मूल विचार है। बोस ने 1939 में हरिपुरा में कहा था कि "स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस को अपनी लोकतांत्रिक स्थिति बनाए रखनी चाहिए। उसे नात्सी पार्टी आदि की तरह, जो कि नेतृत्व के सिद्धांत पर आधारित है, कार्य नहीं करना चाहिए।" उन्होंने विदेशी सहायता को केवल 'आपत धर्म' के रूप में स्वीकार करने का समर्थन किया। हिटलर से उनकी मुलाकात तो हुई, पर भारत को लेकर वे झुके नहीं और दोनों के मार्ग अलग-अलग हो गए। बोस के अपने विचार और लक्ष्य थे, वे किसी के झाँसे में आने वाले नहीं थे। जहाँ तक धुरी-राष्ट्रों (जर्मनी, इटली, जापान) द्वारा बोस को धोखा देने की बात है, बोस का कहना था कि अंग्रेज जैसी धूर्त कौम यदि मुझे धोखा नहीं दे सकी तो अन्य क्या देंगे।

राष्ट्रीय आंदोलन में बोस ने जिस अदम्य साहस के साथ साम्राज्यवादी शक्तियों का विरोध किया और सशस्त्र-संघर्ष का मार्ग अपनाया, उस ओर लोगों का ध्यान इतना अधिक गया कि उनके राजनीतिक चिंतन पर कम ही विचार किया गया। वैचारिक दृष्टि से वे शक्ति के उपासक थे। उनका राजनीतिक चिंतन यथार्थवादी था। राजनीति के क्षेत्र में वे अपनी बात को सशक्त तरीके से विचारार्थ रखने के समर्थक थे। संघर्ष के लिए उनका विश्वास मजदूरों और किसानों को साथ लेकर चलने में था। वे कहते थे कि राजनीतिक आजादी के साथ सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता भी चाहिए। उनका झुकाव वामपंथ की ओर था। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि स्वतंत्रता संघर्ष में प्रमुखता आजादी प्राप्त करने की है और आजादी प्राप्त करने के बाद समाजवादी व्यवस्था आएगी। उन्होंने मार्क्स के 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' को पसंद नहीं किया। कारण, वे मूलतः राष्ट्रवादी थे। वे जमींदारी प्रथा के विरोधी और सहकारी आंदोलन के समर्थक थे। उन्होंने कृषि में वैज्ञानिक तकनीक के उपयोग पर बल दिया। सरकारी नियंत्रण में रहते हुए औद्योगिक विकास का उन्होंने समर्थन किया। मजदूर हितों के लिए कार्य करने की नीति का समर्थन किया। वे नई मुद्रा व्यवस्था के समर्थक थे। स्वतंत्रता के लिए भारतीय आंदोलन को केवल भारत तक सीमित न कर अंतरराष्ट्रीय समर्थन और प्रचार के लिए कार्य करने की आवश्यकता पर उन्होंने जोर दिया। इस प्रकार वे स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का दायरा बढ़ाना चाहते थे।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में गांधीजी के प्रभाव ने कई नेताओं के व्यक्तित्व को बौना बना दिया, किंतु बोस का व्यक्तित्व इतना प्रभावी था और उनके कार्य इतने शौर्यपूर्ण थे कि गांधीजी उन्हें दबा नहीं पाए। बोस गांधीजी के विरोध के बावजूद चमकते रहे। अलबत्ता एक समय तो ऐसा आया (1939), जब गांधीजी ने स्वयं को पार्श्व भाग में खड़ा अनुभव किया। यदि कांग्रेस के नेताओं का उनको सहयोग मिलता तो इतिहास कुछ और होता। हाँ, इतना अवश्य है कि उनका आकलन द्वितीय विश्वयुद्ध और उसके समय की परिस्थितियों के संदर्भ में सही नहीं निकला। इसका परिणाम भी उन्हें भुगतना पड़ा।

बोस ने राष्ट्रवाद का संदेश दिया, उनकी राष्ट्रभक्ति संदेह से परे थी। उनके फौलादी संकल्पों को तोड़ना तो दूर, उन्हें हिलाना भी संभव नहीं था। वे त्याग, शौर्य, साहस और ध्येय निष्ठा के प्रतीक थे। उनके जीवन का मूल्यांकन 'भारतीय समुराई' (Indian Samurai) के रूप में किया जा सकता है, जिसका अर्थ होता है—ऐसा योद्धा जिसे युद्ध में विजय अथवा मरण दोनों में से एक ही अभीष्ट होता है।

(प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा)

प्रधान संपादक, **पुस्तक संस्कृति**

जब 'राष्ट्रनायक' ने 'राष्ट्रपिता' से आशीर्वाद माँगा

सुभाष चंद्र बोस का रेडियो प्रसारण

'राष्ट्रपिता' महात्मा गांधी और 'राष्ट्रनायक' सुभाष चंद्र बोस! एक सत्याग्रह और अहिंसा के अभिनव अस्त्र से अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्ति का आकांक्षी और दूसरा सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से भारत माता की पराधीनता की बेड़ियाँ काटने पर भरोसा करने वाला। एक राष्ट्र की श्रद्धा का केंद्र और दूसरा राष्ट्र की तरूणाई की उमड़ती भावनाओं का प्रतीक। लक्ष्य दोनों का एक, पर मार्ग अलग-अलग। इसी मत वैभिन्य के कारण 1939 के ऐतिहासिक त्रिपुरी अधिवेशन में प्रचंड बहुमत से कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित होने के बावजूद नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने पहले तो कांग्रेस छोड़ी, फिर अपने संकल्प को साकार करने के लिए देश छोड़ दिया और आजाद हिंद फौज का गठन कर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी। उन्होंने अस्थायी आजाद हिंद सरकार का गठन भी किया। धूर्त फिरंगियों ने नेताजी को जापान-जर्मनी आदि धुरी राष्ट्रों का एजेंट सिद्ध करने का प्रपंच रचा, लेकिन भारत को अपने राष्ट्रनायक पर विश्वास तो था ही, गर्व भी था। 'आजाद हिंद रेडियो' से प्रसारित नेताजी के संदेशों में ऐसी कुचालों का मुँहतोड़ जवाब दिया जाता था और देशवासियों को वे अपनी कार्रवाइयों की जानकारियाँ भी देते रहते थे।

06 जुलाई, 1944 को 'आजाद हिंद रेडियो' से 'महात्मा गांधी और राष्ट्र' के नाम प्रसारित अपने विस्तृत संदेश में नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने उस समूची पृष्ठभूमि का विश्लेषण किया और भविष्य की राह बताई, जिसके चलते वे आजाद हिंद फौज के गठन और धुरी राष्ट्रों से सहयोग प्राप्त करने के निष्कर्ष पर पहुँचे। इसी रेडियो प्रसारण में पहली बार महात्मा गांधी के लिए सुभाष चंद्र बोस जैसे राष्ट्रनायक ने 'राष्ट्रपिता' संबोधन का प्रयोग किया। प्रस्तुत है उक्त ऐतिहासिक प्रसारण—

"महात्माजी,

अब आपका स्वास्थ्य पहले से कुछ बेहतर है और आप थोड़ा-बहुत सार्वजनिक काम फिर करने लगे हैं, अतः मैं भारत से बाहर रह रहे राष्ट्रभक्त भारतीयों की योजनाओं और गतिविधियों का थोड़ा-सा ब्यौरा आपको देना चाहता हूँ। मैं आपके बारे में भी भारत से बाहर रह रहे और आपके देशवासियों के विचार आप तक पहुँचाना चाहता हूँ और इस बारे में मैं जो कुछ लिख रहा हूँ वह सत्य है और केवल सत्य है।"

"भारत और भारत के बाहर अनेक भारतीय हैं, जो यह मानते हैं कि संघर्ष के ऐतिहासिक तरीके से ही भारत की आजादी प्राप्त की जा सकती है। ये लोग ईमानदारी से यह अनुभव करते हैं कि ब्रिटिश सरकार नैतिक दबावों अथवा अहिंसक प्रतिरोध के समक्ष घुटने नहीं टेकेगी, फिर भी भारत से बाहर रह रहे भारतीय तरीकों के मतभेद को घरेलू मतभेद जैसा मानते हैं।"

"जब से आप ने दिसंबर 1929 की लाहौर कांग्रेस में स्वतंत्रता का प्रस्ताव पारित कराया था, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभी सदस्यों के समक्ष एक ही लक्ष्य था। भारत के बाहर रहने वाले भारतीयों की दृष्टि में आप हमारे देश के वर्तमान जागृति के जनक हैं और वे इस पद के उपयुक्त सम्मान आपको देते हैं। दुनिया भर के लिए हम सभी भारतीय राष्ट्रवादी हैं। हम सभी भारतीय राष्ट्रवादियों का एक ही लक्ष्य है, एक ही आकांक्षा है। 1941 में भारत छोड़ने के बाद मैंने ब्रिटिश प्रभाव से मुक्त जिन देशों का दौरा किया है, उन सभी देशों में आपको सर्वोच्च सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है—पिछली शताब्दी में किसी अन्य भारतीय राजनेता को ऐसा सम्मान नहीं मिला।"

"हर राष्ट्र की अपनी आंतरिक राजनीति होती है और राजनीतिक समस्याओं के प्रति अपना दृष्टिकोण। लेकिन इससे ऐसे व्यक्ति के प्रति राष्ट्र की श्रद्धा पर कोई असर नहीं पड़ता, जिसने इतनी अच्छी तरह से देशवासियों की सेवा की और जीवन भर एक प्रथम श्रेणी की आधुनिक ताकत से बहादुरी से लड़ा हो। वस्तुतः आपकी और आपकी उपलब्धियों की सराहना उन देशों की तुलना में जो स्वयं को स्वतंत्र जनतंत्र का मित्र कहते हैं, उन देशों में हजार गुना ज्यादा है जो ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध हैं। अगस्त 1942 में जब आपने भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित करवाया तो भारत से बाहर बसे राष्ट्रभक्त भारतीयों और भारतीय स्वाधीनता के विदेशी मित्रों की निगाह में आपका सम्मान कहीं अधिक बढ़ गया।"

"ब्रिटिश सरकार के अपने अनुभवों के आधार पर मैं बड़ी ईमानदारी से यह महसूस करता हूँ कि ब्रिटिश सरकार भारतीय स्वतंत्रता की माँग को कभी स्वीकार नहीं करेगी। आज ब्रिटेन युद्ध जीतने के लिए भारत का अधिकाधिक शोषण करना चाहता है। इस युद्ध के दौरान ब्रिटिश ने अपने क्षेत्र का एक हिस्सा दुश्मनों को खो दिया है और दूसरे पर उसके दोस्तों ने कब्जा कर लिया है। यदि मित्र राष्ट्र किसी तरह जीत भी गए तो भविष्य में ब्रिटेन नहीं, अमेरिका शीर्ष पर होगा और इसका मतलब यह होगा कि ब्रिटेन अमेरिका का आश्रित बन जाएगा।"

"ऐसी स्थिति में ब्रिटेन अपने वर्तमान नुकसान की भरपाई के लिए भारत का कहीं अधिक क्रूरता से शोषण करेगा। इसके लिए लंदन में योजनाएँ बना ली गई हैं और भारत के राष्ट्रवादी आंदोलन को कुचलने के लिए पूरी तैयारी की जा रही है। यह जानकारी मुझे गोपनीय और विश्वस्त सूत्रों से मिली है और मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूँ कि आपको इस बारे में सूचित करूँ।"

"देश में या विदेश में ऐसा कोई भी भारतीय नहीं होगा जिसे प्रसन्नता नहीं होगी, यदि आपके बताए रास्तों से बिना खून बहाए भारत को आजादी मिल जाए, लेकिन स्थितियों को देखते हुए मेरी यह निश्चित धारणा बन गई है कि यदि हम आजादी चाहते हैं तो हमें खून की नदियाँ पार करनी होंगी।"

"यदि स्थितियाँ हमें भारत के भीतर ही सशस्त्र संघर्ष संगठित करने की सुविधाएँ देतीं तो यह हमारे लिए सर्वश्रेष्ठ मार्ग होता। लेकिन महात्माजी, आप अन्य किसी की भी अपेक्षा भारत की स्थितियों को शायद बेहतर समझते हैं। जहाँ तक मेरा संबंध है, भारत में 20 साल तक सार्वजनिक जीवन में रहने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि भारत के बाहर बसे भारतीयों की मदद और कुछ विदेशी शक्तियों की मदद के बिना भारत में संघर्ष करना असंभव है।"

"इस युद्ध से पहले विदेशी शक्तियों की मदद लेना बहुत मुश्किल था और न ही विदेशों में बसे भारतीयों से पर्याप्त मदद ली जा सकती थी, लेकिन युद्ध ने ब्रिटिश साम्राज्य के विरोधियों से राजनीतिक और सैन्य सहायता प्राप्त करने की संभावनाओं को बढ़ा दिया है। लेकिन उनसे किसी प्रकार की मदद की अपेक्षा करने से पहले मेरे लिए यह जानना जरूरी था कि भारत की आजादी की माँग के प्रति उनका दृष्टिकोण क्या है। यह जानने के लिए मैंने भारत छोड़ना जरूरी समझा। निर्णय करने से पहले मेरे लिए यह तय करना भी जरूरी था कि विदेशी मदद लेना सही होगा या गलत।"

"महात्माजी, मैं आपको आश्वस्त करना चाहता हूँ कि महीनों के विचार-मंथन के बाद मैंने इस मुश्किल रास्ते पर चलना स्वीकार किया था। इतने लंबे अरसे तक अपने देश की जनता की भरसक सेवा करने के बाद मुझे देशद्रोही होने अथवा किसी को मुझे देशद्रोही कहने का अवसर देने की क्या जरूरत थी?"

"यदि मुझे इस बात की जरा-सी भी उम्मीद होती कि बाहर से कार्रवाई के बिना हम आजादी पा सकते हैं तो मैं इस तरह भारत नहीं छोड़ता। भाग्य मेरे साथ हमेशा है। अनेक कठिनाइयों के बावजूद अब तक मेरी सारी योजनाएँ सफल हुई हैं। देश से बाहर मेरा पहला काम अपने देशवासियों को संगठित करना था और मुझे यह कहते हुए खुशी हो रही है कि वे सब जगह भारत को आजाद कराने के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं। इसके बाद मैंने उन सरकारों से संपर्क किया जो हमारे दुश्मनों के साथ युद्ध कर रही हैं और मैंने पाया कि सारे ब्रिटिश प्रचार के विपरीत धुरी राष्ट्र भारत की आजादी के समर्थक हैं और वे हमारी मदद करने के लिए तैयार हैं।"

"मैं जानता हूँ कि हमारा शत्रु मेरे खिलाफ प्रचार कर रहा है, लेकिन मुझे विश्वास है कि मुझे अच्छी तरह जानने वाले मेरे देशवासी इस कुप्रचार के झाँसे में नहीं आएँगे। राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा के लिए मैं जिंदगी भर लड़ता रहा हूँ और इसे किसी विदेशी ताकत को सौंपने वाला मैं अंतिम व्यक्ति होऊँगा। दूसरे, किसी विदेशी ताकत से मुझे क्या व्यक्तिगत लाभ हो सकता है, मेरे देशवासियों ने मुझे वह सबसे बड़ा सम्मान दिया है, जो किसी भारतीय को मिल सकता है, इसके बाद विदेशी ताकत से कुछ पाने के लिए मेरे लिए रह भी क्या जाता है।"

"मेरा घोर से घोर शत्रु भी यह कहने का दुस्साहस नहीं करेगा कि मैं राष्ट्र की इज्जत और सम्मान बेच सकता हूँ और मेरा घोर से घोर शत्रु भी यह नहीं कह सकता कि मेरे देश में मेरी कोई इज्जत नहीं थी और मुझे देश में कुछ पाने के लिए विदेशी मदद की जरूरत थी। भारत छोड़कर मैंने अपना सब-कुछ दाँव पर लगाया था, लेकिन यह खतरा उठाए बिना मैं भारत की आजादी प्राप्त करने में कोई योगदान नहीं कर सकता था। मैंने ऐसा कुछ नहीं किया जिससे भारत के आत्मसम्मान और देशवासियों पर किसी तरह की आँच आती हो।"

"यदि पूर्वी एशिया के भारतीय बिना त्याग किए और बिना किसी प्रयास के जापान से मदद लेते तो वे गलत काम करते। लेकिन एक भारतीय के रूप में मुझे इस बात की खुशी और गर्व है कि पूर्वी एशिया में मेरे देशवासी भारत के स्वतंत्रता संग्राम के लिए हर तरह का प्रयास कर रहे हैं और हर तरह की कुर्बानी के लिए तैयार हैं।"

"महात्माजी, अब मैं अपनी अस्थायी सरकार के बारे में कुछ कहना चाहता हूँ। जापान, जर्मनी और सात अन्य मित्र शक्तियों ने आजाद हिंद की अस्थायी सरकार को मान्यता दे दी है और इससे सारी दुनिया में भारतीयों का सम्मान बढ़ा है। इस अस्थायी सरकार का एक ही लक्ष्य है—सशस्त्र संघर्ष करके अंग्रेजों की गुलामी से भारत को मुक्त कराना। एक बार दुश्मनों के भारत छोड़ने के बाद और व्यवस्था स्थापित होने के बाद अस्थायी सरकार का काम पूरा हो जाएगा। तब भारत के लोग स्वयं तय करेंगे कि उन्हें कैसी सरकार चाहिए और कौन उस सरकार को चलाएगा।"

"यदि हमारे देशवासी अपने प्रयासों से अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त हो जाते हैं अथवा यदि ब्रिटिश सरकार हमारे 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है तो हमसे अधिक प्रसन्नता किसी को नहीं होगी। लेकिन हम यह मानकर चल रहे हैं कि इन दोनों में से कोई भी संभव नहीं है और सशस्त्र संघर्ष अनिवार्य है।"

"युद्ध के दौरान दुनिया भर में घूमने के बाद भारत-बर्मा सीमा पर तथा भारत के भीतर दुश्मन की अंदरूनी कमजोरियों को देखने के बाद और ताकत व साधनों का जायजा लेने के बाद मुझे इस बात का पूरा भरोसा है कि आखिरी जीत हमारी होगी।"

"भारत की आजादी का आखिरी युद्ध शुरू हो चुका है। आजाद हिंद फौज के सैनिक भारत की भूमि पर बहादुरी से लड़ रहे हैं। हर तरह की कठिनाई के बावजूद वे धीरे-धीरे, किंतु दृढ़ता के साथ आगे बढ़ रहे हैं। जब तक आखिरी ब्रिटिश भारत से बाहर नहीं फेंक दिया जाता और जब तक नई दिल्ली में वायसराय हाउस पर हमारा तिरंगा शान से नहीं लहराता, यह लड़ाई जारी रहेगी।"

"हमारे राष्ट्रपिता! भारत की आजादी की इस पवित्र लड़ाई में हम आपके आशीर्वाद और शुभकामनाओं की कामना कर रहे हैं। जयहिंद!"

(सप्रे संग्रहालय के संदर्भ में राजभाषा अनुभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'संकल्पना' के तृतीय अंक, 2020 से साभार)

उत्तराखंड से मिली नेताजी को प्रेरणा

नेताजी सुभाष चंद्र बोस और उनकी आजाद हिंद फौज (आईएनए) का उत्तराखंड से गहरा नाता रहा है। हालाँकि दावा तो यहाँ तक किया गया था कि नेताजी ने साधु वेश में 1977 तक अपना शेष जीवन देहरादून में ही बिताया था। उनके प्रवास की सच्चाई जो भी हो, मगर यह बात निर्विवाद सत्य है कि आजाद हिंद फौज बनाने की प्रेरणा उन्हें देहरादून के राजा—महेन्द्र प्रताप सिंह से और पेशावर कांड के हीरो—चंद्र सिंह गढ़वाली से मिली और उनकी फौज को शक्ति गढ़वालियों की दो बटालियनों ने भी दी। इंडियन नेशनल आर्मी (आईएनए) का गठन रास बिहारी बोस ने जापान में 1942 में कर लिया था और रास बिहारी भी देहरादून के फॉरेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट में हेड क्लर्क थे। रास बिहारी 12 दिसंबर, 1911 को दिल्ली में वायसराय लॉर्ड हार्डिंग पर बम फेंकने के मामले में वांछित होने पर देहरादून से भाग कर जापान चले गए थे।

साधु के रूप में नेताजी का कक्ष, देहरादून

महेन्द्र प्रताप से भी नेताजी को मिली प्रेरणा

एक के बाद एक जाँच समितियों और आयोगों के गठन के बाद भी भले ही नेताजी सुभाष चंद्र बोस की मृत्यु की असलियत सामने नहीं आ पाई हो, मगर उनके जीवन की अंतिम लड़ाई में उत्तराखंड के जुड़े होने से इनकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि नेताजी ने निर्वासित 'आजाद हिंद सरकार' का गठन 21 अक्तूबर, 1943 को सिंगापुर में किया था। उस सरकार की राजधानी को 07 जनवरी, 1944 को सिंगापुर से रंगून स्थानांतरित किया गया। लेकिन इससे पहले आजाद भारत की निर्वासित सरकार का गठन राजा महेन्द्र प्रताप ने काबुल में 1915 में कर दिया था। उनके प्रधानमंत्री बरकतुल्ला थे। क्रांतिकारी राजा महेन्द्र प्रताप तत्कालीन संयुक्त प्रांत में मुसान के राजा थे, लेकिन क्रांतिकारी गतिविधियाँ चलाने के लिए वह देहरादून आ गए थे। उनकी रियासत को भी अंग्रेजों ने नीलाम कर दिया था। उन्होंने 1914 में देहरादून से 'निर्बल सेवक' नाम का अखबार निकाला जो कि आजादी का समर्थक था इसलिए महेन्द्र प्रताप को भारत से भागना पड़ा और तब जाकर उन्होंने अफगानिस्तान में आजाद भारत की निर्वासित सरकार बनाई थी। वह 1946 में भारत लौटे और देहरादून के राजपुर रोड पर रहने लगे।

नेताजी को चंद्र सिंह गढ़वाली ने प्रभावित किया

सन् 1930 में हुआ पेशावर कांड भी नेताजी के लिए प्रेरणा स्रोत बना और उस कांड में चंद्र सिंह गढ़वाली के नेतृत्व में गढ़वाली सैनिकों द्वारा निहत्थे आंदोलनकारी पठानों पर गोलियाँ बरसाने से इनकार किए जाने की घटना ने नेताजी को भरोसा दिला दिया कि गढ़वाली सैनिक राष्ट्रवादी हैं और मातृभूमि की आजादी के लिए किसी भी हद तक गुजर सकते हैं।

जयसिंह रावत

जन्म : 10 अप्रैल, 1955, सांकरी, चमोली, गढ़वाल (उत्तराखंड)।

संप्रति : लेखक व पत्रकार।

सम्मान : पत्रकारिता में उल्लेखनीय योगदान के लिए राजस्थान पत्रिका के के.सी. कुलिस अंतरराष्ट्रीय प्रिंट मीडिया जर्नलिज्म अवार्ड, भारत समरसता मंच की ओर से सामाजिक समरसता राष्ट्रीय सम्मान के साथ ही विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

प्रकाशन : आधा दर्जन के अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9412324999

ईमेल– jaysinghrawat@gmail.com

आजाद हिंद फौज में गढ़वालियों का वर्चस्व

दरअसल आजाद हिंद फौज (आईएनए) में गढ़वाल राइफल्स की दो बटालियन (2,600 सैनिक) शामिल थीं। इनमें से 600 से अधिक सैनिक ब्रिटिश सेना से लोहा लेते हुए शहीद हो गए थे। आजाद हिंद फौज में गढ़वाल राइफल्स के गढ़वाली सैनिकों का नेतृत्व करने वाले इन तीन जाँबाज कमांडरों में कर्नल चंद्र सिंह नेगी, कर्नल बुद्धिसिंह रावत और कर्नल पितृशरण रतूड़ी थे। जनरल मोहन सिंह के सेनापतित्व में गठित आजाद हिंद फौज की गढ़वाली अफसरों और सैनिकों की दो बटालियनें बनाई गई थीं। इनमें से एक सेकेंड गढ़वाल की कमान कैप्टन बुद्धिसिंह रावत को और फिफ्थ गढ़वाल राइफल्स की कमान कैप्टन पितृशरण रतूड़ी को सौंपी गई। कैप्टन चंद्र सिंह नेगी को ऑफिसर्स ट्रेनिंग स्कूल में सीनियर इंस्ट्रक्टर बनाया गया। बाद में उन्हें आईएनए के ऑफिसर्स ट्रेनिंग स्कूल सिंगापुर का कमांडेंट बना दिया गया। इन तीनों को बाद में एक साथ पदोन्नति देकर मेजर और फिर ले. कर्नल बना दिया गया। नेताजी सुभाष चंद्र बोस गढ़वाली सैनिकों को बहुत पसंद करते थे। उन्होंने मेजर बुद्धिसिंह रावत को अपने व्यक्तिगत स्टाफ का एडज्यूटेंट और रतूड़ी को गढ़वाली यूनिट का कमांडेंट बना दिया था। इसी तरह मेजर देवसिंह दानू पर्सनल गार्ड बटालियन के कमांडर के तौर पर तैनात थे।

आजाद हिंद फौज में गढ़वालियों का शौर्य

इन अफसरों के अलावा ले. ज्ञानसिंह बिष्ट, कैप्टन महेन्द्र सिंह बागड़ी और मेजर पद्मसिंह गुसाईं की भी अपनी दिलेरी और निष्ठा के चलते आजाद हिंद फौज में काफी धाक रही। ले. ज्ञानसिंह बिष्ट जब 17 मार्च, 1945 को टौंगजिन के मोर्चे पर अपनी टुकड़ी का नेतृत्व कर रहे थे तो उनके पास केवल 98 गढ़वाली सैनिक थे जिनके पास राइफलें ही रक्षा और आक्रमण करने के लिए थीं। उन्होंने अंग्रेजी फौज के हवाई और टैंक-तोपों के हमलों का मुकाबला किया। इनमें से 40 ने वीरगति प्राप्त की। स्वयं ज्ञानसिंह भी दुश्मनों के दाँत खट्टे करने के बाद सिर पर गोली लगने से शहीद हो गए थे। जनरल शाहनवाज खान ने अपनी पुस्तक में इन गढ़वाली सैनिकों और खास कर ज्ञानसिंह बिष्ट की असाधारण वीरता का विस्तार से उल्लेख किया है। कर्नल जी.एस. ढिल्लन ने भी अपनी रिपोर्ट 'चार्ज ऑफ द इमोर्टल्स' में इन रणबाँकुरों के बारे में लिखा है। इसी तरह महेन्द्र सिंह बागड़ी के नेतृत्व में गढ़वाली सेना ने कोब्यू के मोर्चे पर अंग्रेजों की तोपों और टैंकों से लैस लगभग 1,000 सैनिकों की तादात वाली सेना को केवल राइफलों और उन पर लगी संगीनों से ही खदेड़ दिया था। कर्नल पितृशरण रतूड़ी को 'सरदारे-जंग' का वीरता पदक मिला था। दुर्भाग्यवश दूसरे विश्वयुद्ध में जापान की हार के साथ ही आजाद हिंद फौज को भी पराजय का सामना करना पड़ा। आजाद हिंद फौज के सैनिक एवं अधिकारियों को अंग्रेजों ने 1945 में गिरफ्तार कर लिया। आजाद हिंद फौज के गिरफ्तार सैनिकों एवं अधिकारियों पर अंग्रेज सरकार ने दिल्ली के लाल किले में नवंबर 1945 में मुकदमा चलाया।

जाँच पर जाँच बैठी, लेकिन सच्चाई पर परदा बरकरार

जापान ने सबसे पहले 23 अगस्त, 1945 को घोषणा की थी कि नेताजी की मृत्यु 18 अगस्त, 1945 को एक विमान दुर्घटना में हो गई, लेकिन टोकिया और टहैकू के विरोधाभासी बयानों पर संदेह उत्पन्न होने पर प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने 03 दिसंबर, 1955 को तीन सदस्यीय जाँच समिति का गठन करने की घोषणा की जिसमें संसदीय सचिव और नेताजी के करीबी शाहनवाज खान, नेताजी के बड़े भाई सुरेश चंद्र बोस और आईसीएस एन.एन. मैत्रा शामिल थे। इस कमेटी के शाहनवाज खान और मैत्रा ने नेताजी के निधन की जापान की घोषणा को सही ठहराया तो सुरेश चंद्र बोस ने असहमति प्रकट की, इसलिए विवाद बरकरार रहा। इसके बाद 11 जुलाई, 1970 को जस्टिस जी.डी. खोसला की अध्यक्षता में जाँच आयोग का गठन किया गया तो आयोग ने विमान दुर्घटना वाले पक्ष को सही माना, मगर नेताजी के परिजनों, जिनमें समर गुहा भी थे, ने इसे अविश्वसनीय करार दिया। इसी दौरान कलकत्ता हाईकोर्ट ने भी मामले की गहनता से जाँच करने का आदेश भारत सरकार को दिया तो 1999 में सुप्रीम कोर्ट के जज मनोज मुखर्जी की अध्यक्षता में एक और जाँच आयोग गठित किया गया। मुखर्जी आयोग ने माना कि नेताजी अब जीवित नहीं हैं, परंतु वह 18 अगस्त, 1945 में ताईपेई में किसी विमान दुर्घटना का शिकार नहीं हुए थे। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा, "ताईवान ने कहा कि 18 अगस्त, 1945 को कोई विमान दुर्घटना नहीं हुई थी और रैंकोजी मंदिर (टोक्यो) में रखी अस्थियाँ नेताजी की नहीं हैं।" आयोग की जाँच में यह भी पाया गया कि गुमनामी बाबा के नेताजी होने का कोई ठोस सबूत नहीं।

क्या देहरादून के साधु नेताजी थे?

आयोग ने देहरादून के राजपुर रोड स्थित शोलमारी आश्रम के संस्थापक स्वामी शारदानंद के भी नेताजी होने की पुष्टि नहीं की। आयोग के समक्ष दावा किया गया था कि फकाता कूच बिहार की

नेताजी के संदेहास्पद साधु रूप में देहरादून निवास

नेताजी के संदेहास्पद साधु के रूप में निवास, देहरादून

तर्ज पर ही शोलमारी आश्रम बना हुआ है। आयोग के समक्ष कहा गया कि इस आश्रम की स्थापना 1959 के आस-पास उक्त साधु ने की थी जिसका विस्तार बाद में 100 एकड़ में किया गया और वहाँ लगभग 1,500 अनुयायी रहने लगे। आश्रम में सशस्त्र गार्ड भी रखे गए जिससे स्थानीय लोग आशंकित हुए। सन् 1962 में नेताजी के एक साथी मेजर सत्य गुप्ता ने आश्रम में पहुँचकर साधु से बात की और वापस कलकत्ता लौटने पर उन्होंने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस कर साधु को नेताजी होने का दावा किया जो कि 13 फरवरी, 1962 के अखबारों में छपा। यह मामला संसद में भी उठा। उक्त साधु की 1977 में मृत्यु हो गई। जाँच आयोग ने कुल 12 लोगों के बयान शपथ पत्र के माध्यम से लिए जिनमें से आठ ने साधु को नेताजी बताया, मगर एक वकील निखिल चंद्र घटक, जो कि साधु के कानूनी मामले भी देखते थे, ने आयोग के समक्ष कहा कि साधु स्वयं कई बार स्पष्ट कर चुके थे कि वह सुभाष चंद्र बोस नहीं हैं और उनके पिता जानकी नाथ बोस और माता विभावती बोस नहीं, बल्कि वह पूर्वी बंगाल के एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे हैं। आयोग नेताजी के देहरादून में रहने की पुष्टि नहीं कर सका। इसी तरह आयोग के समक्ष शेवपुर कलाँ, मध्य प्रदेश और फैजाबाद के साधुओं के नेताजी होने के दावे किए गए जिन्हें आयोग ने अस्वीकार कर दिया।

कैबिनेट सचिव अजीत सेठ कमेटी की सिफारिशें

10 अप्रैल, 2015 के 'इंडिया टुडे' अंक में में खुफिया ब्यूरो द्वारा 20 साल तक नेताजी के परिजनों पर निगरानी की कहानी छपने के बाद वर्तमान सरकार ने अप्रैल 2015 में कैबिनेट सचिव अजीत सेठ की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन किया जिसमें गृह मंत्रालय, आईबी, रॉ और प्रधानमंत्री कार्यालय से जुड़े अधिकारी शामिल थे। इस कमेटी को ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट के आलोक में यह देखना था कि क्या नेताजी से संबंधित गोपनीय फाइलों को अवर्गीकृत किया जा सकता है। यह एक्ट सूचना के अधिकार के दायरे से भी बाहर है। ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट ब्रिटिश काल से चला आ रहा है। अधिनियम में स्पष्ट किया गया है कि कोई भी कार्य जो देश के दुश्मनों को मदद दे, इस अधिनियम के दायरे में आता है। इसमें यह भी कहा गया है कि कोई भी सरकार की ओर से प्रतिबंधित क्षेत्र, कागजात आदि को नहीं देख सकता और न ही देखने की माँग कर सकता है। अजीत सेठ कमेटी की सिफारिश के बाद सरकार ने नेताजी से संबंधित फाइलों को अवर्गीकृत कर सार्वजनिक करने का निर्णय लिया था।

गोपनीय फाइलें

नेताजी से संबंधित लगभग 200 गोपनीय फाइलें सार्वजनिक होने पर भी नेताजी की मौत का रहस्य नहीं सुलझ पाया है। जबकि 2014 में जब नई सरकार बनी थी तो आशा बँधी थी कि केंद्र में सत्तारूढ़ नई सरकार अपने चुनावी वादे को पूरा कर जब नेताजी से संबंधित फाइलें सार्वजनिक करेगी तो नेताजी की मौत से संबंधित रहस्य की परतें एक के बाद एक खुलती जाएँगी। यह चुनावी वादा भी इसीलिए किया गया था ताकि देश की जनता अपने एक महानायक की मौत की सच्चाई जान सके। प्रधानमंत्री ने अपने वादे के अनुसार 14 अक्तूबर, 2015 को वे फाइलें सार्वजनिक करने की घोषणा की और उस घोषणा के मुताबिक प्रधानमंत्री कार्यालय ने अवर्गीकृत 33 फाइलों की पहली खेप को 04 दिसंबर, 2015 को राष्ट्रीय अभिलेखागार को सुपुर्द कर दिया। इसके बाद गृह मंत्रालय ने 37 और विदेश मंत्रालय ने भी 25 फाइलों को पहली खेप के तौर पर राष्ट्रीय अभिलेखागार को सौंप दिया, ताकि शोधकर्ता उन फाइलों में छिपी सच्चाई को बाहर निकाल सकें।

प्रधानमंत्री ने जनता की अपेक्षाओं के अनुकूल कदम उठाते हुए 23 जनवरी, 2016 को स्वयं नेताजी से संबंधित 100 फाइलों की डिजिटल प्रतियाँ सार्वजनिक जानकारी के लिए जारी कीं जिनमें 15,000 से ज्यादा पन्ने हैं। राष्ट्रीय अभिलेखागार ने भी 29 मार्च, 2016 तथा 27 अप्रैल, 2016 को दो किश्तों में नेताजी से संबंधित 75 अवर्गीकृत डिजिटल फाइलों की प्रतियाँ सार्वजनिक जानकारी के लिए जारी कीं। अभिलेखागार ने 27 मई, 2016 को सर्वसाधारण के लिए 25 फाइलों की चौथी खेप जारी की जिसमें पाँच फाइलें प्रधानमंत्री कार्यालय की, चार फाइलें गृह मंत्रालय की और 16 फाइलें विदेश मंत्रालय की थीं। इसी प्रकार पश्चिम बंगाल सरकार ने भी कुछ गोपनीय फाइलें राज्य अभिलेखागार को सौंपीं।

कोलकाता में राज्य सरकार ने 18 सितंबर, 2015 को नेताजी सुभाष चंद्र बोस से जुड़ी 64 फाइलों को सीडी के रूप में आम लोगों और नेताजी के परिजनों के बीच बाँट दिया। इन फाइलों से जुड़े 12,744 पेज को डिजिटल रूप में बदला गया है। नेताजी से जुड़ी इन फाइलों को कोलकाता पुलिस म्यूजियम में ही सुरक्षित रखा गया है, लेकिन इतनी बड़ी कसरत के बाद भी भारतीय राजनीति के सबसे बड़े रहस्य से परदा नहीं उठ सका।

इतिहास बदलने वाले वे शब्द

इतिहास में नेताजी के नाम से विख्यात सुभाष चंद्र बोस कुशल एवं ओजस्वी वक्ता भी थे। स्पष्ट ही है कि स्वाधीनता संग्राम और राजनीति की दुनिया में सक्रिय होने के बाद रोजाना उन्हें भाषण देना ही पड़ता होगा। उन्होंने कई भाषण भी दिए जिनमें से त्रिपुरी कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में दिया भाषण हो या फिर युवा नेता के तौर पर लाहौर में छात्रों को संबोधन हो, नेताजी के ये संदेश अपनी ओजस्विता, नई दृष्टि और कुशल शब्द चयन के लिए इतिहास में मशहूर हो चुके हैं। लेकिन आजाद हिंद फौज के कमांडर-इन-चीफ होने के नाते उन्होंने जो भाषण दिए हैं, इतिहास में उनका खास स्थान है।

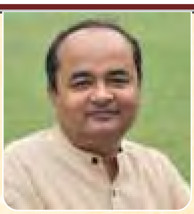

उमेश चतुर्वेदी

जन्म : बछांव, बलिया, उ.प्र.।

संप्रति : मीडिया कंसल्टेंट, आकाशवाणी समाचार, नई दिल्ली।

शिक्षा : पत्रकारिता में स्नातकोत्तर।

लेखन : कई समाचार-पत्रों व टीवी चैनलों में संपादक, प्रोड्यूसर के रूप में कार्य, साढ़े छह हजार से ज्यादा आलेख प्रकाशित। 'बाजारवाद के दौर में मीडिया' व 'दिनमान' की मोनोग्राफ पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : भोजपुरी लेखन के लिए बागीश्वरी प्रसाद पुरस्कार, काका कालेलकर सम्मान।

संपर्क : मोबाइल– 9599661151

ई-मेल : uchaturvedi@gmail.com

नेताजी, स्वाधीनता संग्राम के पहले सेनानी रहे, जिन्होंने 'दिल्ली चलो' और लाल किले पर परेड का आह्वान किया था। अंग्रेजों के खिलाफ जापानी सेना के सहयोग से लड़ाई की शुरुआत करते हुए बोस ने सिंगापुर के टाउन हॉल के सामने वाले मैदान में 05 जुलाई, 1943 को जो भाषण दिया था, उसके वीडियो अब इंटरनेट तक पर मौजूद हैं। इस भाषण का एक-एक शब्द जंग-ए-आजादी के प्रति निष्ठा से न सिर्फ भरा हुआ है, बल्कि सुनने वालों को उत्प्रेरित भी करता है। दिलचस्प यह है कि नेताजी ने यह भाषण हिंदी में दिया था। इसमें उन्होंने कहा था कि इस जंग-ए-आजादी में चाहे हमारी मौत हो या फिर हम जिंदा रहेंगे, लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि आखिर में कामयाबी हमारी ही होगी। नेताजी ने यह भाषण आजाद हिंद फौज के कमांडर रासबिहारी बोस के साथ ही सिंगापुर के भारतीय समुदाय के सामने दिया था। इसे जिसने भी सुना, वह मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए उद्वेलित हो उठा। इस ऐतिहासिक भाषण में नेताजी ने कहा था–

"आपने मुझको पूर्वी एशिया की जंग-ए-आजादी का नेता बनाया, उसके लिए तहे दिल से आप लोगों का शुक्रिया अदा करता हूँ। यह वक्त बहुत नाजुक है। इस नाजुक वक्त में मैं इस जिम्मेदारी को कुबूल करता हूँ। लेकिन यहाँ एक बात नम्रता से स्वीकार करता हूँ और यह माँगता हूँ कि ईश्वर हमें वह ताकत, वह जोश और वह बहादुरी दे कि हम पूरी-पूरी ताकत के मुताबिक लड़ाई लड़ें और हिंदुस्तान को आजाद कराएँ। हमें यह काम अगर करना है तो हमें दुनिया की ओर भी देखना होगा। दुनिया की तारीख में यह नई बात नहीं है।... क्योंकि हमारी अंदरूनी हालत कठिन है इसलिए भी हमें यह काम करना ही है। लेकिन हमारी हुकूमत का मतलब क्या होगा? हमारे सामने एक ही प्रोग्राम रहेगा, भलाई का काम करना, भलाई के लिए काम करना, भलाई का इल्तिजा देना और कामयाब होना तभी हम जाकर लाल किले, दिल्ली में जाकर विक्ट्री परेड करेंगे। इसके लिए हमें अपना खून बहाना है। हमें कुर्बानी बढ़ाना है। सब्र के साथ सामना करना है। इसके साथ हमारे रास्ते में क्या है–सिर्फ मौत। कोई यह नहीं कह सकता कि हम जिंदा रहेंगे। हम जिंदा रहेंगे या तो मरेंगे। कोई बात नहीं। सही बात यह है कि आखिर में हमारी कामयाबी होगी।"

आजादी को लेकर नेताजी की उत्कट अभिलाषा का प्रतीक है टोक्यो में दिया उनका भाषण। 21 जून, 1943 को टोक्यो में उन्होंने कहा था—

"आज जबकि मैं टोक्यो में हूँ और जो बोल रहा हूँ, मुझे विश्वास है आप उसे समझेंगे। आपने जिस गर्मजोशी से मेरा स्वागत किया, उसके लिए मैं आप सभी को शुक्रिया कहना चाहूँगा। आपके सहयोग से हम अपनी मातृभूमि को मुक्त कराने में सफलता प्राप्त करेंगे। आपको पता है कि मैं आशावादी हूँ। आपके लिए मैं इतना ही कह सकता हूँ कि आप सब पर मुझे गर्व है। जब विश्व के देश हमारी सहायता करते हैं तो हमारी चुनौतियाँ स्वयं ही आसान हो जाती हैं जितना कि इसके बिना नहीं हो पातीं। इसे लेकर कोई बहानेबाजी नहीं चलेगी कि एशिया का कोई भी भारतीय व्यक्ति आजादी के

संग्राम के लिए काम नहीं करेगा। कई देशों ने, खासकर जापान ने समय-समय पर हमारी मदद की है। मैं भी यही सब करता रहा हूँ, लेकिन हमारे देश को आजाद करने की जिम्मेदारी हम किसी दूसरे पर नहीं डालेंगे, क्योंकि यह हमारे राष्ट्र के सम्मान के खिलाफ होगा। प्रत्येक भारतीय, वह चाहे जहाँ रह रहा हो, उसे देश की आजादी के लिए अपना योगदान देना होगा। जीत तक लड़ाई करना सबका फर्ज है। मैं मानता हूँ कि जब तक कि विदेश में रह रहे सारे भारतीय एकजुट होकर आंदोलन में सहभागिता नहीं करेंगे, तब तक देश आजाद नहीं हो सकेगा। अपने देश से बाहर रह रहे भारतीय अपनी मातृभूमि के लिए अधिकतम सेवाएँ दें। इसके लिए अंतरराष्ट्रीय संघर्ष से गुजरना होगा। यहाँ पूर्वी एशिया में आपने देखा होगा कि किस प्रकार यहाँ के लोगों के मन में भारत की आजादी को लेकर सहानुभूति है। हमें यह हक नहीं है कि हम किसी से मदद की उम्मीद रखें जब तक कि अपने स्तर पर हमारे सारे प्रयास चूक नहीं जाते। हर हाल में हमारे भाइयों, बहनों, देशवासियों ने बेहतर काम किया है, लेकिन दुश्मन क्रूर है।"

नेताजी जब पूर्वी एशिया के मोर्चे से अंग्रेजों को चुनौती दे रहे थे, तब देश में स्वाधीनता आंदोलन अपने चरम पर था। तब उनके सशस्त्र संघर्ष की आलोचना हो रही थी। इसके जवाब में 06 जुलाई, 1944 को 'रंगून रेडियो' से उन्होंने सीधे-सीधे महात्मा गांधी को संबोधित किया था। इस संबोधन में उन्होंने न सिर्फ अपने सशस्त्र संघर्ष को जायज ठहराया था, बल्कि इसी भाषण में महात्मा गांधी को उन्होंने पहली बार बतौर 'राष्ट्रपिता' संबोधित किया था। इतिहास में यह भाषण बहुत प्रसिद्ध है। हालाँकि उन्होंने बतौर कांग्रेस राष्ट्रपति (स्वाधीनता के पहले कांग्रेस के अध्यक्ष को राष्ट्रपति ही कहा जाता था) 29 जनवरी, 1939 को जबलपुर के त्रिपुरी में जो भाषण दिया था, उसकी चर्चा कम होती है। यहाँ याद किया जाना चाहिए कि इसी अधिवेशन में कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए गांधीजी के उम्मीदवार पट्टाभि सीतारमैया को नेताजी ने 203 मतों के भारी अंतर से हराया था। इसके पहले वे 1938 के हरिपुरा अधिवेशन में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने जा चुके थे। त्रिपुरी कांग्रेस में गांधी के विरोध के बावजूद नेताजी दूसरी बार अध्यक्ष चुने गए थे। बतौर कांग्रेस अध्यक्ष उन्होंने जो भाषण दिया था, उसका संपादित अंश अग्रलिखित है—

"इस वर्ष का अधिवेशन कई अर्थों में अस्वाभाविक एवं खास है। इस बार अध्यक्ष का चुनाव हमेशा की तरह नहीं रहा। निर्वाचन के बाद अप्रत्याशित घटनाएँ घटीं, जिनका अंत कार्यकारिणी कमेटी के 90 में से प्रमुख 12 सदस्यों—सरदार पटेल, राजेंद्र प्रसाद, मौलाना आजाद व अन्य के इस्तीफे के साथ हुआ। कार्यकारिणी के एक अन्य प्रमुख और विशिष्ट सदस्य पंडित जवाहरलाल नेहरू ने हालाँकि औपचारिक रूप से इस्तीफा नहीं दिया है, लेकिन उन्होंने एक ऐसा वक्तव्य जरूर दिया है, जिससे लोगों को लगता है कि उन्होंने भी त्यागपत्र दे दिया है।

त्रिपुरी कांग्रेस के पूर्व की घटनाओं ने महात्मा गांधी को आमरण अनशन की प्रतिज्ञा करने के लिए बाध्य किया। उसके बाद एक बीमार अध्यक्ष त्रिपुरी में उपस्थित हुआ। ऐसी स्थिति में अध्यक्षीय भाषण का पहले के भाषणों की बनिस्बत छोटा होना स्वाभाविक है। फरवरी 1938 में हरिपुरा में हमारे मिलने से लेकर अब तक अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में कई अहम घटनाएँ घटी हैं। उनमें सर्वप्रमुख 1938 का म्यूनिख समझौता है, जिसके कारण फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन जैसी पश्चिमी शक्तियों को नाजी जर्मनी के सम्मुख आत्मसमर्पण करना पड़ा। इसके नतीजतन यूरोप में फ्रांस का प्रभुत्व समाप्त हो गया है और एक भी गोली खर्च किए बिना ही ताकत जर्मनी के हाथ में चली आई। हाल ही में स्पेन की रिपब्लिक सरकार के पतन ने तानाशाह इटली और नाजी जर्मनी की शक्ति और प्रतिष्ठा को बढ़ा दिया है। फ्रांस और ब्रिटेन जैसी कथित गणतंत्रीय ताकतों ने कुछ समय के लिए सोवियत रूस को यूरोप की राजनीति से अलग करने के षड्यंत्र में इटली और जर्मनी से हाथ मिलाया है। किंतु यह कब तक रहेगा? और रूस को नीचा दिखाने के प्रयास से फ्रांस और ग्रेट ब्रिटेन को क्या फायदा होगा? इसमें संदेह नहीं कि एशिया और यूरोप की हालिया घटनाओं के कारण फ्रांसीसी एवं ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शक्ति और सम्मान को गहरा धक्का लगा है।

अपनी बीमारी को ध्यान रखते हुए मुल्क की सियासत के संबंध में मैं कुछ समस्याओं की ओर ध्यान दिलाऊँगा। सबसे पहले, उन बातों को स्पष्ट कर दूँ, जिन्हें मैं कुछ समय से अनुभव कर रहा हूँ। स्वराज के सवाल को उठाने और इस संबंध में ब्रिटिश सरकार को अल्टीमेटम देने का वक्त आ गया है। निष्क्रिय बरताव और हम पर संघीय सरकार लादने का वक्त बीत चुका है।

“इसे स्वीकार किया जाना चाहिए कि चरित्र निर्माण और मनुष्यता के विकास के लिए राजनीति में हिस्सेदारी जरूरी है। इसलिए स्वस्थ क्रियाशीलता राजनीतिक, सामाजिक और कलात्मक-चरित्र के विकास के लिए बहुत जरूरी है। विश्वविद्यालयों का काम किताबी कीड़े, गोल्ड मेडलिस्ट और ऑफिस के लिए क्लर्क पैदा करना नहीं होता, बल्कि चरित्रवान व्यक्ति बनाना होता है जो जीवन के विभिन्न हिस्सों में अपने देश के लिए महानता हासिल करके महान बन सकें।”

इस पर शक की गुंजाइश नहीं कि यूरोप में स्थायी शांति, चाहे वह चार शक्तियों के बीच होने वाले समझौते से हो या किसी अन्य तरीके से, लेकिन यह तय है कि ग्रेट ब्रिटेन इसके बाद कठोर साम्राज्यवादी नीति अख्तियार करेगा। वह पैलेस्टाइन में यहूदियों के खिलाफ अरबों को खुश करने की तैयारी में है, क्योंकि वह अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र अपने को असुरक्षित महसूस कर रहा है।

इसलिए मेरी राय में हमें ब्रिटिश सरकार के सामने अल्टीमेटम के रूप में अपनी माँग रखनी होगी और तय वक्त देना होगा। यदि उस समय तक कोई उत्तर नहीं मिलता है तो हमें अपनी राष्ट्रीय माँग हासिल करने के लिए अपनी ताकत का इस्तेमाल करना होगा। आज हमारे पास सत्याग्रह का अस्त्र है और ब्रिटिश सरकार लंबे अरसे तक किसी भी सर्वभारतीय सत्याग्रह जैसे संघर्ष का सामना करने की हालत में नहीं है।

मुझे इस बात का दुख है कि कांग्रेस में कुछ ऐसे निराशावादी व्यक्ति हैं, जो यह सोचते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य पर किसी शक्तिशाली आघात के लिए यह अनुकूल वक्त नहीं है, किंतु हकीकत में देखने से मैं निराशा का कोई आधार नहीं देखता। आठ प्रांतों में कांग्रेस की सरकार होने की वजह से हमारे राष्ट्रीय संगठन की शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ी है। संपूर्ण भारत में जन आंदोलन प्रगति पर है और भारतीय रियासतों का अभूतपूर्व जागरण कम महत्वपूर्ण नहीं है।

स्वराज की दिशा में आगे बढ़ने का कौन-सा अवसर इससे ज्यादा उपयुक्त हो सकता है? खासकर एक शांतचित्त यथार्थवाद के रूप में मैं यह कह सकता हूँ कि मौजूदा समूचा हालात हमारे इतने अधिक पक्ष में है कि कोई भी व्यक्ति बहुत अधिक आशावादी हो सकता है। यदि हम सिर्फ अपने मतभेदों को भुला दें और अपनी पूरी शक्ति एवं साधन को राष्ट्रीय संघर्ष में लगा दें तो हम अपनी मौजूदा अनुकूल हालत का सबसे ज्यादा फायदा उठा सकते हैं। अन्यथा हम एक ऐसे अवसर को खो देंगे, जो किसी भी राष्ट्र के जीवन में दुर्लभ होता है।”

यह बात और है कि सुभाष चंद्र बोस की अपील के बावजूद कांग्रेस उलझन से नहीं उबर पाई और ठीक चार महीने बाद उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देना पड़ा था।

नेताजी का एक और भाषण बहुत मशहूर है, जिसे उन्होंने 19 अक्तूबर, 1929 को लाहौर में आयोजित छात्रों के सम्मेलन में दिया था। तब वे युवा नेता के तौर पर उभर चुके थे। उस भाषण के अंश देखिए–

“आपने हमें कलकत्ता से यहाँ आपको संबोधित करने के लिए बुलाया है। आपने हमें क्यों बुलाया है? क्या इसलिए कि पूर्व और पश्चिम को अपनी आम समस्याएँ सुलझाने के लिए मिलना चाहिए? क्या इसलिए कि बंगाल जिसे सबसे पहले विदेशी आधिपत्य में लाया गया, और पंजाब जिसे सबसे अंत में गुलाम बनाया गया, को एक-दूसरे की जरूरत है? या इसलिए कि आप और हममें कुछ समानताएँ हैं—समान विचारों को साझा करना और समान आकांक्षाओं को पोषित करना है?

मैं जानता हूँ कि इस देश में लोग यहाँ तक कि कुछ प्रमुख हस्तियाँ भी हैं जो सोचती हैं कि इस विषय में कोई राजनीति नहीं है और यह कि छात्रों का राजनीति से कुछ लेना-देना नहीं होना चाहिए, लेकिन मेरा अपना विचार है कि किसी भी विषय में राजनीति होती है। किसी भी आश्रित देश की वह प्रत्येक समस्या जिसके बारे में आप सोच सकते हैं, उसके बारे में कब उचित तरीके से विश्लेषण किया गया, किसी राजनीतिक समस्या को सबसे नीचे पाया जाएगा।

ऐसे में आप शिक्षा को राजनीति से अलग कैसे कर सकते हैं? मानव जीवन को डिब्बों में नहीं बाँटा जा सकता है। राष्ट्रीय जीवन के सभी आयाम एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। ऐसे में सभी बुराइयाँ और सारी कमियाँ राजनीतिक कारणों से ही हो सकती हैं। परिणामस्वरूप, आप सभी महत्वपूर्ण समस्याओं के प्रति आँखें कैसे बंद करके रख सकते हैं?

इसे स्वीकार किया जाना चाहिए कि चरित्र निर्माण और मनुष्यता के विकास के लिए राजनीति में हिस्सेदारी जरूरी है। इसलिए स्वस्थ क्रियाशीलता राजनीतिक, सामाजिक और कलात्मक-चरित्र के विकास के लिए बहुत जरूरी है। विश्वविद्यालयों का काम किताबी कीड़े, गोल्ड मेडलिस्ट और ऑफिस के लिए क्लर्क पैदा करना नहीं होता, बल्कि चरित्रवान व्यक्ति बनाना होता है जो जीवन के विभिन्न हिस्सों में अपने देश के लिए महानता हासिल करके महान बन सकें।”

मुझमें राजनीतिक जागरूकता कब आई

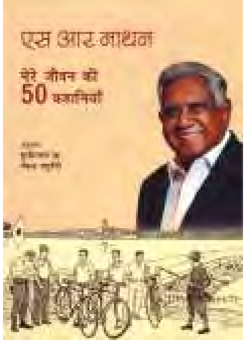

एस.आर. नाथन (03 जुलाई, 1924—22 अगस्त, 2016) को 'आधुनिक सिंगापुर का निर्माता' कहा जाता है। वे 1999 से 2011 तक वहाँ के लोकप्रिय राष्ट्रपति रहे। एक विपन्न, लावारिस बचपन से जीवन शुरू करने वाले श्री नाथन अपनी पुस्तक—'मेरे जीवन की 50 कहानियाँ' में लिखते हैं कि किस तरह नेताजी सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज के माध्यम से उनमें राजनीतिक जागरूकता आई। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने उनकी इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद प्रकाशित किया है। प्रस्तुत है पुस्तक का वह अंश, जहाँ वे नेताजी के साथ अपने अनुभव साझा कर रहे हैं। चित्र भी मूल पुस्तक से ही हैं।

मेरे परिवार का जन्म यहीं हुआ था और उन्हें राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी। मैं खुद भी स्वयं को राजनीति के योग्य नहीं समझता था। हमें अपने अंग्रेज समर्थक संबंध पर गर्व था। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक करिश्माई नेता से हुई दो भेंटों ने मेरी सोच बदल डाली। वह व्यक्ति था—सुभाष चंद्र बोस।

जुलाई 1943 में, मुझे पहली बार सुभाष चंद्र बोस के दर्शन हुए जब वह द्वितीय विश्वयुद्ध के ठीक पहले जोहोर के सुल्तान द्वारा निर्मित और उस समय जापानी सेना के दक्षिण-पूर्व एशिया के कमांडर के अधिकार में इस्ताना बुकित सीरीन में एक सभा के लिए पहुँचे थे।

बोस सैन्य संघर्ष को भारत को स्वतंत्रता दिलाने का एक मार्ग मानते थे। उन्होंने लंदन में उच्च शिक्षा ग्रहण की थी, और ब्रितानी योग्यता परीक्षाओं में सफल होने के बाद भारतीय लोक सेवा (इंडियन सिविल सर्विस) में शामिल हो सकते थे, किंतु उन्होंने एक राजनीतिक लक्ष्य को चुना। उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध को, जिसमें जर्मनी और जापान दोनों ब्रिटेन के विरुद्ध खड़े थे, स्वतंत्रता को और करीब लाने के अवसर के रूप में देखा, और सहायता के लिए जापान की तरफ देखा। उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय सेना (आजाद हिंद फौज/आईएनए) की कमान सँभाली, जिसमें अधिकांशतः जापानियों द्वारा कैद दक्षिण-पूर्व एशिया के भारतीय युद्धबंदियों के रंगरूटों को शामिल किया गया। उन्हें आशा थी कि बर्मा से भारत की सीमा पार करते समय आईएनए जापानी टुकड़ियों में शामिल हो सकता है, जहाँ भारतीय लोगों द्वारा उपनिवेशवाद के विरुद्ध जन आंदोलन चलाया जा रहा था, जिनके बीच वे उतने ही लोकप्रिय थे जितने गांधी।

मैंने उन्हें उनकी कार से निकलता हुआ देखा। उनके सिर पर बाल नहीं थे और उन्होंने चश्मा पहन रखा था। जापानी सेना उनके लिए सावधान की मुद्रा में खड़ी थी। मेरे जापानी बॉस, जो मेरे साथ थे, ने मुझसे कहा कि बोस पादांग में, जिसके सामने आज सिटी हॉल है, (जापानी इसे 'स्योनान तोकुबेत्सु शि' कहते थे) बोलने के लिए एक-दो दिनों में कभी भी आ सकते हैं। उसने मुझे कार्यक्रम को देखने के लिए जाने की सलाह दी। इस तरह, राजनीति में सक्रिय एक भारतीय मित्र के साथ मैं गया।

मेरे मित्र और मैं शाम को लगभग पाँच बजे पादांग पहुँचे। हमारी नजर जहाँ भी गई, हमने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की एक प्रमुख पार्टी के झंडे देखे। पार्टी आज भी भारत की राजनीति में एक अग्रणी भूमिका निभाती है। सिंगापुर का प्रायः समस्त भारतीय समुदाय वहाँ पहुँचा हुआ था। अगली पंक्ति की कुर्सियाँ अभिजात वर्ग के साफ-सुथरे कपड़े पहने दंपतियों से भरी हुई थीं।

जल्द ही जापानी युद्ध नायकों से भरी कारों की सघन सुरक्षा में लिमोजीन कारों की एक कतार वहाँ बन गई। उनमें से एक कार में से वह व्यक्ति, जिसे मैंने इस्ताना बुकित सीरीन में देखा था, निकला और धीर-धीरे चलता हुआ मंच पर गया, जो नगर भवन की सीढ़ियों पर बनाया गया था। उसके बैठने तक, मंच पर उपस्थित हर व्यक्ति खड़ा रहा। उनके आचरण में आदर की भावना दिखाई देती थी। साँस थामे मैं इंतजार करता रहा। इस तरह औपचारिक और सार्वजनिक सम्मान प्रदर्शन करते हुए जापानी शासकीय लोगों को मैंने कभी नहीं देखा था, यहाँ तक कि जोहोर के सुल्तान को भी।

बोस के उठ खड़े होने और बोलने का समय आया। उनके पहले कुछ शब्द हिंदी में थे, 'भाइयो और बहनो' का संबोधन। उसके बाद उन्होंने अंग्रेजी में बोलना शुरू किया। उनका विषय भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई था। उन्होंने अंग्रेजों की निर्ममता और जनसंहारों की बात

की, जिनमें निर्दोष लोगों को मशीन गनों से भून डाला गया था। थोड़ी ही देर में वर्षा शुरू हो गई। इससे बचने के लिए लोग सुरक्षित स्थानों पर जाने लगे। माइक्रोफोन से बोस की आवाज आती रही। उन्होंने कहा कि स्वतंत्रता की लड़ाई जारी रखने के लिए, वह स्वयं को जोखिम में डालकर इतनी दूर आए हैं। वर्षा के कारण लोगों को भागते हुए देखकर उन्हें धक्का लगा। उन्होंने पूछा कि अंग्रेजों ने उन्हें क्या बना डाला है—इतना कमजोर और डरपोक! क्या उनके भाइयों के साथ उनका जन्म नहीं हुआ था? क्या अपने संघर्ष करते भाइयों और बहनों को अंग्रेजों की दासता से मुक्ति दिलाने को वे अपना कर्तव्य नहीं मानते? लोगों की भीड़ फिर शांतिपूर्वक बैठ गई, और जब तक कार्यक्रम समाप्त नहीं हो गया और बोस मंच से उतर नहीं गए, वे अपनी जगह पर बैठे रहे।

इस फटकार से मैं प्रभावित हुआ। कुलीनों को इस तरह कड़ी फटकार लगते देखकर मुझे रोमांच हो आया। सबसे बढ़कर, बोस के भाषण के लहजे से मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ। सिंगापुर में ज्यादातर भारतीय तमिल बोलते थे। बोस, जो बंगाल से आए थे, तमिल नहीं बोले (वह बांग्ला भी बहुत अच्छी तरह नहीं बोलते थे)। वह बेहिचक बोले, और उनके अंग्रेजी शब्द और उच्चारण शुद्ध थे। यह पहला अवसर था जब मैंने इतिहास और न्याय की खोज से जुड़े ये संदर्भ सुने। वास्तव में, उन्होंने मेरी कल्पनाशक्ति को जगा दिया, और राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय होने की मुझमें चाहत जगा दी और अंततः मैं 1950 में ली कुआन यु के नेतृत्व में उनकी राजनीतिक रैलियों के जरिए राजनीतिक संघर्ष में कूद पड़ा।

कुछ दिनों बाद, जब मैं मुआर में था, बोस से मिलने का मुझे अवसर मिला। मैं उस दल में था, जो एक अपरिचित, गैर-जापानी अति महत्वपूर्ण व्यक्ति को सुरक्षा दे रहा था, और वह थे प्रायद्वीप की यात्रा पर आए बोस। मैं उस व्यक्ति की एक झलक पाने को आगे बढ़ा। जब वह अपनी कार से निकले, मैं उनके साथ नाव तक गया। उन्होंने कहा, 'तुम भारतीय हो, भारतीय राष्ट्रीय सेना (आजाद हिंद फौज) में शामिल क्यों नहीं हो जाते?' मैंने जवाब दिया, 'मेरा जन्म यहीं हुआ है,' जिस पर उन्होंने कहा, 'इससे क्या फर्क पड़ता है?' मैं समझ नहीं सका कि क्या जवाब दूँ। अब तक नाव दूसरे किनारे पहुँच चुकी थी, और बोस अपने मार्ग पर बढ़ गए।

बोस को अधिक दिनों तक नहीं रहना था। समझा जाता है कि 1945 में हार्बिन के रास्ते में हवाई दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई। फिर भी, अपने पीछे वह एक सशक्त राजनीतिक विरासत छोड़ गए। वर्षों बाद, भारत-बर्मा सीमा क्षेत्रों के भ्रमण पर आए एक बीबीसी संवाददाता ने लिखा कि भारतीय राज्य मणिपुर के लोगों ने उसे वे विस्तृत क्षेत्र दिखाए, जिन पर बोस की आजाद हिंद फौज ने आधिपत्य कर लिया था। वापस बर्मा भेजे जाने के पहले, उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय ध्वज फहराकर इसे एक स्वतंत्र क्षेत्र घोषित कर रखा था।

बोस महत्वपूर्ण क्यों थे? उनमें एक जुनून था, जो मैंने अन्य लोगों में कभी नहीं देखा था। उनके भाषण बिजली की तरंगों की तरह होते थे। अपने भाषण वे अंग्रेजी में देते थे। उनके निकट जुटने वाले लोगों में ज्यादातर श्रमिक और बागानों के कामगार, और उनकी स्त्रियाँ होते थे, जो केवल अपनी-अपनी मातृभाषाओं में ही सहज महसूस करते थे। किंतु जो अंग्रेजी नहीं जानते, वे भी उन भाषणों को सुनने के लिए घंटों खड़े प्रतीक्षा करते। उन्होंने दिखा दिया कि संकल्प और जुनून के साथ, कोई नेता किसी राष्ट्र को किस तरह जगा सकता है। अपनी मुहिम के लिए वह अपना जीवन तक होम करने को तैयार दिखते थे, जिसका हम पर असीम प्रभाव पड़ा। आजाद हिंद फौज को लेकर उनकी आशाएँ कभी पूरी नहीं हो पाईं। किंतु, पादांग के उनके महान भाषण ने मलाया के भारतीयों में जन राजनीति का सूत्रपात कर दिया। उनके पहले, केवल जापानियों ने, जिनका अपना ही एजेंडा था—सार्वजनिक रूप से अंग्रेजी 'आतंक' के विरुद्ध और उससे लड़ने की जरूरत पर आवाज उठाई थी। चीन में जापान विरोधी प्रबल भावनाओं के कारण चीन का कोई भी नेता इस तरह नहीं बोल सका था। इस तरह का भाषण देने वाला मलाया का कोई लोकप्रिय नेता नहीं था। बोस जब भी बोलते, अखबारों में खबरें आतीं। उन्होंने एक ऐसे वातावरण का निर्माण कर दिया था, जिसने युद्ध खत्म हो जाने पर, मलायों और चीनियों समेत, कई लोगों को मजदूर संघ आंदोलन जैसी गतिविधियों के जरिए संघर्ष जारी रखने को प्रोत्साहित किया।

बोस को सुनने उमड़ी भीड़ उनके भाषण से मंत्रमुग्ध थी।

मैं बोस से उनकी प्रायद्वीप यात्रा के दौरान मुआर में पुनः मिला।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस के जीवन से संबद्ध प्रेरक प्रसंग

भारतीय स्वाधीनता संग्राम से संबद्ध एक प्रमुख सूक्त वाक्य "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा", जिसे पढ़कर, सुनकर या मात्र स्मरण कर, आज भी जन-मानस में राष्ट्र प्रेम, स्वाधीनता की भावना तथा इसके निमित्त अपने प्राणों की आहुति देने व अपना सर्वस्व न्योछावर करने का जज्बा अंतर्मन में हिलोरें लेने लगता है, के प्रणेता भारत माता के अमर सपूत नेताजी सुभाष चंद्र बोस थे।

स्वतंत्रता आंदोलन के महान नायक नेताजी सुभाष चंद्र बोस का जन्म कटक (ओड़िशा) में 23 जनवरी, 1897 को हुआ। उनके पिता 'राय बहादुर' श्री जानकीनाथ अपने समय के प्रसिद्ध वकील थे व माता

श्रीमती प्रभावती देवी थीं। उनके पिता ने ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों के विरोध में अपना 'राय बहादुर' का खिताब लौटा दिया था। इस घटना ने भी बालक सुभाष के मन में राष्ट्र हित व स्वाधीनता की प्रेरणा जागृत की।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस के जीवन से संबद्ध कुछ प्रेरक प्रसंग निम्नवत हैं—

1. सुभाषचंद्र बोस कटक में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद प्रेसीडेंसी कॉलेज तथा स्काटिश चर्च कॉलेज, कलकत्ता के प्रतिभावान विद्यार्थी रहे। इसके बाद वे इंडियन सिविल सर्विस (आईसीएस) की परीक्षा की तैयारी के लिए कैंब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैंड गए तथा इस प्रतिष्ठित सेवा की परीक्षा में उन्होंने चतुर्थ स्थान प्राप्त किया। उस समय यह सफलता किसी भी भारतीय के लिए अतीव महत्वपूर्ण थी। भारत वापस लौटने पर देश-प्रेम व स्वाधीनता की भावना से ओत-प्रोत होकर उन्होंने इस प्रतिष्ठित सेवा से त्यागपत्र दे दिया और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से जुड़कर सक्रिय राजनीति में शामिल हो गए। नेताजी सुभाष चंद्र बोस, देश की स्वाधीनता के निमित्त गांधी की अहिंसा की भावना से असहमत थे तथा स्वाधीनता के लिए राजनैतिक गतिविधियों के साथ-साथ कूटनीतिक व सैन्य सहयोग के भी प्रबल पक्षधर थे। परंतु महात्मा गांधी को 'राष्ट्रपिता' की संज्ञा से सर्वप्रथम नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने ही संबोधित किया था।
2. वे 1938 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए तथा उन्होंने 'राष्ट्रीय योजना आयोग' का गठन किया। वे 1939 में पुनः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

अशोक कुमार श्रीवास्तव

कृषि वैज्ञानिक, गन्ना अनुसंधान में विगत 40 वर्षों का अनुभव, गन्ना संबंधित 24 पुस्तकों का लेखन/संपादन; इंडियन जर्नल ऑफ सुगर टेक्नोलॉजी का पाँच वर्षों तक संपादन, हिंदी भाषा की प्रमुख पुस्तकें—'गन्ना उत्पादन और उपयोग' (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से प्रकाशित) तथा 'उत्तर प्रदेश में गन्ना खेती की किसानोपयोगी आवश्यक जानकारी' (भारतीय अनुसंधान संस्थान से प्रकाशित)।

संपर्क : मोबाइल— 9616542403

ईमेल— shrivastavaashokindu@gmail.com

के अध्यक्ष चुने गए तथा महात्मा गांधी के विरोध के चलते वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से अलग हो गए।

हम लोग वर्ष 2016 में अंडमान निकोबार द्वीप समूह की यात्रा पर गए थे। वहाँ एक प्रसिद्ध पर्यटन स्थल 'रॉस द्वीप' पर हमारे गाइड ने बताया कि मार्च 1942 से अक्तूबर 1945 तक यह द्वीप जापानियों के अधिकार में था। इसी दौरान नेताजी सुभाष चंद्र बोस, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य से संघर्ष करने के लिए जापानियों की सहायता ली थी, दिसंबर 1943 में एक दिन यहाँ रुके थे तथा उन्होंने यहाँ तत्कालीन राष्ट्रीय तिरंगा झंडा भी फहराया था।

3. उनकी विचारधारा के चलते ब्रिटिश सरकार द्वारा उन्हें गिरफ्तार कर दार्जिलिंग के कुर्सिओंग के पास गिद्धापार के सुरम्य स्थल में एक घर में लगभग सात महीने तक नजरबंद रखा गया था। वे यहाँ से अपनी चतुराई से भाग निकलने में कामयाब रहे। स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए 'दुश्मन के दुश्मन से मित्रता करने' के विचार से यूरोपीय देशों तथा जापान के शासनाध्यक्षों से मिले। वे 1943 में सिंगापुर आए जहाँ उन्होंने कैप्टन मोहन सिंह द्वारा स्थापित आजाद हिंद फौज की कमान अपने हाथों में लेकर उसका पुनर्गठन किया। इसमें महिला सेनानियों हेतु एक 'रानी झाँसी रेजीमेंट' का भी गठन किया गया। सशक्त क्रांति द्वारा पराधीन भारत को स्वाधीन कराने के लिए उन्होंने 21 अक्तूबर, 1943 को 'आजाद हिंद सरकार' की स्थापना की।

4. नेताजी सुभाष चंद्र बोस द्वारा 12 सितंबर, 1944 को शहीद क्रांतिवीर यतीन्द्र दास (जिनका 63 दिन की भूख हड़ताल के पश्चात लाहौर सेंट्रल जेल में निधन हो गया था) के स्मृति दिवस पर बर्मा (आधुनिक म्यांमार) की राजधानी रंगून (आधुनिक नाम यंगून, आज-कल म्यांमार की राजधानी 'नेफिदो' है) के जुबिली हॉल में दिए गए व्याख्यान का एक प्रेरणाप्रद अंश निम्नवत है—

"स्वतंत्रता संग्राम के मेरे साथियो! स्वतंत्रता बलिदान चाहती है। आपने आजादी के लिए बहुत त्याग किया है, किंतु अभी प्राणों की आहुति देना शेष है। आजादी को आज अपने शीश फूल की तरह चढ़ा देने वाले पुजारियों की आवश्यकता है। ऐसे नौजवानों की आवश्यकता है, जो अपना शीश काटकर स्वाधीनता देवी को भेंट चढ़ा सकें। तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा। खून भी एक-दो बूँद नहीं, इतना कि खून का एक महासागर तैयार हो जाए और उसमें मैं ब्रिटिश साम्राज्य को डुबो दूँ।"

मैंने वर्ष 2009 में नेताजी सुभाष चंद्र बोस संग्रहालय, दार्जिलिंग जो कुर्सिओंग के पास गिद्धापार के सुरम्य स्थल में स्थित है, के दर्शन किए। यह मूलतः श्री शरत चंद्र बोस का घर था, जिसमें नेताजी सुभाष चंद्र बोस को ब्रिटिश सरकार द्वारा घर में नजरबंद रखा गया था। इस लघु संग्रहालय में नेताजी से संबद्ध अनेक तस्वीरों, उनके द्वारा लिखे गए अनेक पत्रों व उनके द्वारा प्रयुक्त विभिन्न सामान को प्रदर्शित गया है। तदोपरांत हम लोग वर्ष 2016 में अंडमान निकोबार द्वीप समूह की यात्रा पर गए थे। वहाँ एक प्रसिद्ध पर्यटन स्थल 'रॉस द्वीप' पर हमारे गाइड ने बताया कि मार्च 1942 से अक्तूबर 1945 तक यह द्वीप जापानियों के अधिकार में था। इसी दौरान नेताजी सुभाष चंद्र बोस, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य से संघर्ष करने के लिए जापानियों की सहायता ली थी, दिसंबर 1943 में एक दिन यहाँ रुके थे तथा उन्होंने यहाँ तत्कालीन राष्ट्रीय तिरंगा झंडा भी फहराया था।

यह सुनकर मुझे अपने देश के महान सपूत का हमारे देश की स्वाधीनता के लिए आईसीएस के सेवा से त्यागपत्र देना व सशक्त क्रांति से स्वाधीनता प्राप्त करने का जज्बा पुनः स्मरण हो आया और उनके सारे कार्य एक बार चलचित्र की भाँति आँखों के सामने आने लगे। कहीं से मुझे उनका सूक्त वाक्य 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा' भी प्रतिध्वनित-सा होता महसूस हो रहा था और मन में राष्ट्र के लिए कुछ कर गुजरने का जज्बा हिलोरें मारने लगा। यह हमारे लिए राष्ट्र गौरव एवं हर्ष का विषय है कि भारत सरकार ने 30 दिसंबर, 2018 को 'रॉस द्वीप' का नाम 'नेताजी सुभाष चंद्र बोस द्वीप' करने की घोषणा की।

कैसे पहुँचे थे नेताजी जर्मनी

उस दिन अचानक जर्मन रेडियो से आवाज सुनाई दी, "आजाद हिंद रेडियो बर्लिन, मैं सुभाष बोल रहा हूँ।" नेताजी सुभाष चंद्र बोस की आवाज जब देशवासियों ने सुनी तो खुशी की लहर चारों ओर फैल गई। दूसरी ओर अंग्रेज हैरान हो गए और उन्होंने नेताजी (सुभाष) के संबंध में पूछताछ तेज कर दी।

नेताजी का अचानक जर्मनी पहुँचकर बर्लिन से बोलना अपने आप में एक अद्भुत चमत्कार ही तो था। यह बात सन् 1940 की बताई जाती है, जिस समय नेताजी सुभाष चंद्र बोस अपने घर में नजरबंद थे। उनके घर के चारों ओर कड़ा पहरा था, लेकिन यह किसे मालूम था कि नेताजी अपने देश (भारत) की आजादी के लिए अंदर-ही-अंदर नए-नए तरीके सोचते रहते थे। इसी मध्य एक दिन बातों-ही-बातों में उन्होंने फॉरवर्ड ब्लॉक के प्रमुख सरदार निरंजन सिंह तालिब से कह दिया, "सरदार साहिब, मैं देश से बाहर जाना चाहता हूँ। आप मेरे लिए कोई उचित प्रबंध करवा दें।"

इस तरह सरदार निरंजन सिंह ने नेताजी के लिए आगे जमशेदपुर के व्यापारी सरदार बलदेव सिंह से बात की और बलदेव सिंह ने पंजाब की 'कीर्ती किसान पार्टी' के कॉमरेड अक्षर सिंह से बात करके एक अन्य क्रांतिकारी राम सिंह और नेताजी को देश से बाहर ले जाने के लिए मना लिया। फिर बात आगे से आगे पहुँचते-पहुँचते कॉमरेड भगत राम तक पहुँच गई। भगत राम ने आगे की सारी तैयारी कर ली, क्योंकि उसे फ्रंटियर क्षेत्र की पूरी जानकारी थी तथा उस क्षेत्र से पूर्व परिचित भी था, दूसरा उसे पश्तो तथा अन्य भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था। इन सभी बातों के साथ-ही-साथ भगत राम के बड़े भाई क्रांतिकारी हरिकृष्ण ने भी तो उस समय पंजाब के गवर्नर की हत्या करने की कोशिश की थी, जिसके लिए उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गई थी। तभी से कॉमरेड भगत राम अंग्रेजों का जानी दुश्मन हो गया था और किसी-न-किसी तरह अंग्रेजों से अपने भाई का बदला लेना चाहता था।

उधर नजरबंद नेताजी सुभाष अकेले रहने लगे थे। यहाँ तक कि उन्होंने सब से मिलना-जुलना भी बंद कर दिया था। फिर कई-कई दिन तो उनका कमरा भी बंद रहने लगा था। नेताजी के इस व्यवहार को देखते-देखते शीघ्र ही यह समाचार फैल गया कि नेताजी ने समाधि ले ली है। उधर उत्तर-पश्चिमी सीमा क्षेत्र (फॉरवर्ड ब्लॉक पेशावर) के अकबर शाह ने भी कॉमरेड भगत राम को नेताजी को काबुल तक पहुँचाने की पक्की जिम्मेदारी दे दी थी, लेकिन इस कार्य को करने के लिए पैसा चाहिए था, जिसके लिए महिला क्रांतिकारी उज्ज्वला मजूमदार का विशेष योगदान नहीं भुलाया जा सकता। उज्ज्वला मजूमदार को बंगाल के गवर्नर एंडरसन को गोली से उड़ाने के लिए उम्रकैद की सजा सुनाई गई थी। शेष पैसों की जो कमी रह गई थी, उसे पंचा बापू (शैलश चरण गुप्ता) ने पूरा कर दिया था।

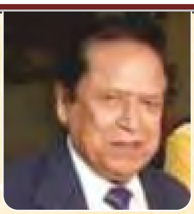

डॉ. कमल के. 'प्यासा'

संप्रति : पूर्व प्रधानाचार्य एवं पूर्व संपादक, मंडी मनरेगा पत्रिका व काउंसलर, इग्नू।

शिक्षा : एम.फिल., पी-एच.डी. व ए.डब्ल्यू.सी. (जीव-जंतु कल्याण)।

प्रकाशन : कहानी, कविता व कला संस्कृति विषयों पर चार पुस्तकें प्रकाशित।

सम्मान : हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा श्रेष्ठ अध्यापक, प्रदेश सरकार व भाषा संस्कृति विभाग द्वारा लेखन, राज्य विज्ञान तकनीकी व पर्यावरण परिषद द्वारा विज्ञान की विभिन्न उपलब्धियों के लिए सम्मानित।

संपर्क : मोबाइल– 9882176248

ई-मेल : pyasa.kamalpruthi@gmail.com

17 जनवरी, 1941 को नेताजी सुभाष चंद्र बोस के बाहर जाने का प्रबंध पूरा हो गया था। वह रात को 01:25 बजे उठे और दबे पाँव धीरे-धीरे निकल गए। सुबह होते ही उनकी गाड़ी धनबाद में एक कोठी के आगे जा रुकी। उस समय नेताजी लंबे, ऊँचे, दाढ़ी-मूँछ वाले पठान के वेश में बीमा एजेंट बने हुए थे। 18 जनवरी, 1941 को रात के अँधेरे में नेताजी गोमो रेलवे स्टेशन से दिल्ली-कालका मेल के एक डिब्बे में बैठ गए। नेताजी के साथ जो तीन व्यक्ति आए थे, जिनको नेताजी ने आखिरी विदाई दी, वे थे—नेताजी के बड़े भतीजे अशोक बोस, उनकी पत्नी और गाड़ी का ड्राइवर अर्थात उनका छोटा भतीजा डॉ. शिशिर बोस।

नेताजी की ट्रेन गति के साथ आगे बढ़ रही थी, लेकिन वह तो अपने विचारों की उधेड़बुन में खोए हुए थे..."पता नहीं कलकत्ता के क्या समाचार होंगे...? क्या पुलिस को मेरे लापता होने की जानकारी होगी...? पर कैसे पता चलेगा इन सब बातों का...?"

अभी अचानक ट्रेन एक स्टेशन पर रुकी ही थी कि एक टिकट चेकर नेताजी वाले डिब्बे में दाखिल हुआ। नेताजी जल्दी से हाथ में पकड़े समाचार पत्र को अपने मुँह के आगे करके पढ़ने में व्यस्त हो गए। इस तरह की कई एक मुसीबतों का सामना करते हुए, शेरवानी व चूड़ीदार पैजामा पहने मौलवी जियाउद्दीन (नेताजी) पेशावर जा पहुँचे। उधर पहले से ही निर्धारित कार्यक्रमानुसार उस दाढ़ी-मूँछ वाले लंबे-ऊँचे पठान के आगे-आगे अकबर शाह चुपचाप चले जा रहे थे। पठान स्टेशन से बाहर पहुँचकर एक ताँगे पर बैठ गया और ताँगा चल पड़ा। पीछे दूसरे ताँगे में बैठकर अकबर शाह, पठान के ताँगे के पीछे-पीछे हो लिया। इस तरह नेताजी पठान के वेश में सीधे ताजमहल होटल पहुँचकर बताए गए कमरे में पहुँच गए।

21 जनवरी, 1941 को शाम चार बजे कॉमरेड भगत राम की मुलाकात नेताजी से हुई। दोनों ने मिलकर अगले सफर की योजना तैयार कर ली।

26 जनवरी को रात के समय नेताजी सुभाष चंद्र बोस तथा कॉमरेड भगत राम एक गाड़ी में बैठकर पहाड़ी व उबड़-खाबड़ रास्तों से निकलकर 'खजूरी मैदान' तक जा पहुँचे। आगे की यात्रा पैदल थी जिसमें सबसे आगे गाइड, बीच में नेताजी और फिर पीछे-पीछे कॉमरेड भगत राम चल रहे थे। पैदल रास्ता बड़ा ही कठिन और खतरों से भरा था। चलते-चलते नेताजी थक चुके थे। उनके पैर सर्दी से काँप रहे थे, लेकिन फिर भी वह बराबर चले जा रहे थे। रात के 12 बजे तक वे 'पिशकान मेना' गाँव ही पहुँच पाए थे। उस समय सभी सर्दी से काँप रहे थे। किसी तरह उन्होंने वह सर्दी भरी रात बड़ी ही मुश्किल से एक मस्जिद में काटी और सुबह फिर बरफ का सफर शुरू हो गया। बरफ की कड़कड़ाती ठंड से नेताजी की हालत बिगड़ती ही जा रही थी। स्थिति को देखते हुए आठ रुपये भाड़े के एक खच्चर का प्रबंध किया गया। खच्चर अभी थोड़ा ही चला था कि वह फिसल कर गिर पड़ा और नेताजी भी नीचे जा गिरे, लेकिन यात्रा फिर भी जारी रही। दुर्गम रास्तों व कठिनाइयों का सामना करते हुए वे 36 घंटों के पश्चात रात के एक बजे के करीब अफगानिस्तान के एक गाँव तक जा पहुँचे। आगे फिर 13 रुपये के भाड़े पर दूसरे खच्चर का प्रबंध करके अगले दिन 10 बजे 'गाड्डी' गाँव पहुँच गए।

आगे पेशावर से काबुल का रास्ता इतना कठिन नहीं रहा था, लेकिन फिर भी नए क्षेत्र का कुछ डर जरूर था। तभी तो इस बार भगत राम, रहमत खाँ पठान तथा नेताजी, रहमत खाँ पठान के चाचा जियाउद्दीन बन गए थे। फिर दोनों चाचा-भतीजा पेशावर-काबुल सड़क से जलालाबाद के लिए चल पड़े और देखते-ही-देखते दो घंटों में आगे बसोल गाँव जा पहुँचे। बसोल से उन्हें जलालाबाद के लिए एक ट्रक मिल गया और रात 10 बजे के करीब दोनों जलालाबाद पहुँच गए।

सुबह होते-होते दोनों अड्डा शरीफ से होते हुए काबुल नदी को एक तैराक की सहायता से पार कर के 'लालपुरा' जा पहुँचे। आगे का सफर फिर पैदल चलकर ही तय किया गया क्योंकि उन्हें सुल्तानपुर तक कोई भी गाड़ी नहीं मिली थी। इस प्रकार शाम पाँच बजे के करीब दोनों भूखे-प्यासे व बुरी तरह से थके 'मिमला' गाँव जा पहुँचे। अब नेताजी से चला नहीं जा रहा था इसलिए दोनों सड़क किनारे बस की प्रतीक्षा करने लगे। इसी मध्य थकान के कारण नेताजी की आँख लग गई। कॉमरेड भगत राम इस बीच नेताजी के लिए कुछ खाने को ले आए, लेकिन खाना उनकी किस्मत में कहाँ था...! अचानक किसी ट्रक की आवाज सुन नेताजी

एकदम खड़े हो गए और खाना वहीं-का-वहीं धरा रह गया। दोनों ट्रक में बैठकर 'बुदरवाल चौक पोस्ट' को पार कर, 31 जनवरी को काबुल जा पहुँचे।

रात काबुल की धर्मशाला में काटकर, सुबह रूसी दूतावास जा पहुँचे, लेकिन वहाँ नेताजी का काम नहीं बन पाया और फिर चार दिन दूतावास के चक्कर लगाते-लगाते ही निकल गए। पाँचवें दिन एक अफगान गुप्तचर उनके पीछे लग गया तथा उन्हें इतने दिनों तक धर्मशाला में रहने का कारण पूछने लगा और पुलिस स्टेशन जाने को कहने लगा। लेकिन रहमत खाँ पठान (कॉमरेड भगत राम) ने अपने गूँगे बहरे चाचा जियाउद्दीन (नेताजी) के अस्पताल में उपचार का बहाना बनाकर तथा उस अफगान गुप्तचर को कुछ पैसे देकर उससे पीछा छुड़ा लिया। वह गुप्तचर पैसे मिलने से (लालच के कारण) अगले दिन फिर आ गया। इस बार रहमत खाँ ने उसे दस रुपये देने चाहे, लेकिन गुप्तचर ने दस रुपये लेने से इनकार कर दिया और कहने लगा, "मैं कुछ नहीं लूँगा। मैं तो तुम्हारा दोस्त हूँ। हाँ, अगर तुम देना ही चाहते हो तो मुझे कुछ ऐसी निशानी दे दो, जो तुम्हारी दोस्ती की याद दिलाती रहे...!" दरअसल उस गुप्तचर की नजरें रहमत खाँ अर्थात नेताजी की कलाई पर बँधी सोने की घड़ी पर थी। रहमत खाँ को अपने चाचा जियाउद्दीन की खातिर वह घड़ी उस गुप्तचर को देनी ही पड़ी।

बार-बार रूसी दूतावास जाने पर भी जब नेताजी का काम नहीं बना तो अगले दिन उन्होंने जर्मन दूतावास जाने का मन बना लिया और भगत राम को बाहर छोड़कर नेताजी खुद जर्मन दूतावास पहुँच गए। लेकिन अफगान गुप्तचर अब भी उनका पीछा करते-करते भगत राम के पास पहुँच गया और भगत राम ने फिर से पाँच रुपये देकर जान छुड़ाई।

उधर रेडियो द्वारा नेताजी के गायब होने का समाचार चारों ओर फैल चुका था। कॉमरेड भगत राम भी बार-बार अफगान गुप्तचर की पूछताछ से बचने के लिए अपने पुराने मित्र उत्तम चंद के यहाँ जा पहुँचा और वहीं पर उसने अपने और नेताजी के ठहरने का प्रबंध करवा लिया, लेकिन जब उत्तम चंद को गुप्तचर और पुलिस की बात का पता चला तो वह भी डर गया और दोनों के ठहरने का प्रबंध अपने घर के स्थान पर किसी अन्य सराय में कर दिया। सराय में व्यवस्था ठीक न होने व सर्दी के कारण नेताजी बीमार पड़ गए तो फिर उत्तम चंद उन्हें अपने यहाँ ले आए।

जब जर्मन दूतावास से भी काम बनने की उम्मीद न रही तो नेताजी रूस की सरहद को पार करने के बारे में सोचने लगे। इसके लिए उन्होंने याकूब नाम के एक व्यक्ति को चार सौ रुपये देकर 24 फरवरी का दिन यात्रा के लिए निश्चित कर लिया। इसके साथ-ही-साथ बर्लिन से नेताजी को संदेश प्राप्त हो गया और अब इटली के राजदूत से मिलना ही रह गया था। फिर 12 मार्च को उत्तम चंद की दुकान पर इटली के राजदूत की पत्नी श्रीमती कोरानी पहुँचीं और उन्होंने जानकारी दी कि रूस सरकार की सहमति आ गई है।

17 मार्च को नेताजी जाने को तैयार हो गए तो उत्तम चंद की छोटी बेटी की आँखों में आँसू भर आए और अपने प्यारे नेता से पूछने लगी, "फिर कब आओगे?" और वह नेताजी की ओर बड़े ही दुखी मन से देखती ही रह गई। नेताजी को इस तरह जाते देखकर सबकी आँखें भर आई थीं और वे सभी दुखी मन से उन्हें विदा कर रहे थे।

इटली के राजदूत की गाड़ी में चार लोग बैठे थे, जिसमें एक थे डॉ. बेलगार, एक जर्मन, एक अंग्रेज (कार चालक) तथा चौथा व्यक्ति

जो न तो सुभाष था, न जियाउद्दीन, हाँ वह था सिनोर ऑरलैंडो मजोटा। यही था सुभाष का इटैलियन नाम जो कि उनके पहचान पत्र में लिखा हुआ था।

"अच्छा अलविदा। फिर मिलेंगे आजाद भारत में।" नेताजी हाथ हिलाते हुए बोल रहे थे। भगत राम, उत्तम चंद तथा उसके परिवार वाले सभी नेताजी की कार को तब तक देखते रहे जब तक कि कार उनकी नजरों से ओझल नहीं हो गई।

देश की आजादी का महानायक

आजाद हिंद फौज के संस्थापक और भारत की स्वतंत्रता में अहम भूमिका निभाने वाले नेताजी सुभाष चंद्र बोस की जयंती का 125वाँ वर्ष है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी उनकी 125वीं जयंती समारोहों की शुरुआत कोलकाता के ऐतिहासिक विक्टोरिया मेमोरियल हॉल से कर चुके हैं। उनसे जुड़े कार्यक्रमों का आयोजन सालभर किया जाएगा। नेताजी की यादों से जुड़े कार्यक्रमों का आयोजन कोलकाता, दिल्ली सहित नेताजी और आजाद हिंद फौज से जुड़े देश-विदेश के अन्य स्थलों पर किया गया है। आजाद हिंद फौज के 75वें स्थापना दिवस को भी मोदी सरकार ने भव्य तरीके से मनाया था, जिसमें खुद प्रधानमंत्री शामिल हुए थे। साथ ही, केंद्र सरकार ने नेताजी से जुड़ी गोपनीय फाइलों को भी सार्वजनिक किया था जिनकी माँग भारतीय जनता की ओर से काफी समय से की जा रही थी।

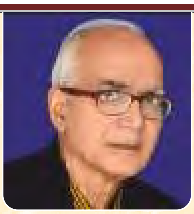

निरंकार सिंह

जन्म : 01 जनवरी, 1952, बाराबंकी (उत्तर प्रदेश)

शिक्षा : विज्ञान स्नातक

संप्रति : नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिंदी विश्वकोश' के सहायक संपादक के रूप में कार्य। साथ ही विभिन्न समाचार पत्रों में सहायक संपादक की भूमिका निभाई। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन।

संपर्क : मोबाइल– 9451910615

ई-मेल– nirankarsi@gmail.com

नेताजी का जन्म उड़ीसा प्रांत की तत्कालीन राजधानी कटक में 23 जनवरी, 1987 को हुआ। पाँच वर्ष की आयु में उन्हें मिशन स्कूल, कटक में प्रवेश दिलाया गया था। वे सात वर्ष तक इस स्कूल में रहे। 1909 में उन्होंने रावेंशा कोलिजियेट स्कूल, कटक में प्रवेश माँगा। उन्हें अपने अध्यापकों की प्रशंसा मिली। 1917 में स्कॉटिश चर्च कॉलेज कलकत्ता में प्रवेश लिया। 1919 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से द्वितीय स्थान प्राप्त करते हुए प्रथम श्रेणी में स्नातक परीक्षा दर्शन शास्त्र में पास की। इसके बाद यूनाइटेड किंगडम में आईसीएस की परीक्षा में उन्हें चौथा स्थान मिला, लेकिन उन्होंने आईसीएस की नौकरी की अपेक्षा देश की सेवा करना बेहतर समझा। दरअसल सुभाष एक उत्साही राष्ट्रवादी व प्रचंड देशभक्त थे। अत्यंत प्रलोभन वाली आईसीएस से उनका त्यागपत्र, समय-समय पर स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के कारण उनकी गिरफ्तारियाँ, कड़ी सुरक्षा व्यवस्था होने पर भी उनका अदृश्य हो जाना, हिटलर, मुसोलिनी तथा जापानी सम्राट से उनकी झड़पें, आजाद हिंद फौज का उनके द्वारा गठन, आजाद हिंद की अस्थायी सरकार का नेतृत्व करना, सिंगापुर रेडियो से उनके प्रेरणाप्रद भाषण, उद्‌गार तथा अंत में एक गुप्त मिशन पर जाते समय विमान दुर्घटना में उनका निधन–इन सभी से जो उज्ज्वल छवि निखरकर आती है, वह उनके देश-प्रेम और उत्कट राष्ट्रवाद की है। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के पाश से भारत को मुक्त कराने की एक उन्मत की लगन जिससे वे ओत-प्रोत थे तथा देश के लिए महान कष्ट

जो उन्होंने सहे थे, इन सभी ने उन्हें इतिहास में मूर्धन्य राष्ट्रीय नेताओं के समकक्ष ला खड़ा किया है।

देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष के दौरान सुभाष चंद्र बोस को कई बार जेल पाना पड़ा। 23 जनवरी, 1930 को एक स्वतंत्रता जुलूस का नेतृत्व करते हुए बोस बंदी बना लिए गए तथा उन्हें एक वर्ष का कठोर कारावास दंड रूप में भुगतना पड़ा। इसके बाद 26 जनवरी, 1931 को दोबारा बंदी बनाकर जेल भेज दिया गया। गांधी-इरविन समझौते के बाद अन्य राजनीतिक बंदियों के साथ उन्हें भी छोड़ दिया

गया। तीसरे दशक की शुरुआत में उन्हें फिर जेल भेज दिया गया और 1937 में रिहा कर दिया गया। जेल से रिहा होने के बाद उनकी मुलाकात महात्मा गांधी से हुई। गांधीजी बोस से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने 1938 में उन्हें कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित करने का निश्चय कर लिया। 19 फरवरी, 1938 को हरिपुरा में कांग्रेस के 51वें अधिवेशन की अध्यक्षता बोस ने की। उन्होंने सितंबर 1938 में म्युरिख संधि के बाद अपनी मातृभूमि के निवासियों से अनुरोध किया कि वे अपने युद्ध के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन की तैयारी करें। गांधीवादियों ने इसका विरोध किया। उन्होंने औद्योगीकरण के लिए सर्वांगीण योजना तैयार करने के उद्देश्य से एक योजना आयोग का गठन कर गांधीजी को अप्रसन्न होने का एक और कारण प्रस्तुत कर दिया। औद्योगीकरण गांधीजी के लिए आँख की किरकिरी के समान था। 1939 में जब विश्वयुद्ध अवश्यंभावी हो गया, बोस तूफानी परिस्थितियों में देश को आजाद कराने के उद्देश्य से पुनः कांग्रेस अध्यक्ष बनना चाहते थे। वे चाहते थे कि अंग्रेजों को अंतिम चेतावनी के रूप में छह साल में भारत छोड़ने के लिए कहा जाए। गांधीजी बोस के पुनर्निर्वाचन के विरुद्ध थे। उन्होंने नेहरू का नाम प्रस्तावित किया, किंतु उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया। मौलाना आजाद भी अपने नाम पर सहमत नहीं हुए।

गांधीजी का तीसरा चुनाव डॉ. पट्टाभि सीतारमैया के नाम था। बोस, जिसका नाम प्रांतीय कांग्रेस समिति ने प्रस्तावित किया था, अपना नाम वापस लेने पर सहमत नहीं हुए। अनेक व्यक्तियों को पूर्णतः आश्चर्यचकित करते हुए बोस ने डॉ. पट्टाभि को पराजित कर दिया। बोस अपनी विजय के प्रति पूर्णतः आश्वस्त थे जैसे कि उनके इस वक्तव्य से स्पष्ट है, "मैं गणितीय सुनिश्चितता से कह सकता हूँ कि मैं सीतारमैया को पराजित कर दूँगा।" इस प्रकार खुले रूप में सीतारमैया का समर्थन करने वाले गांधीजी को अपमानजनक पराजय का मुँह देखना पड़ा। यह गांधीजी की व्यक्तिगत पराजय थी जिसे वह कभी मानसिक रूप से स्वीकार नहीं कर पाए। यहाँ तक कि बोस ने भी गांधीजी के वक्तव्यों और विचारों पर अपनी प्रतिक्रिया बड़े दुख के स्वर में व्यक्त की। कुछ समय बाद सुभाष चंद्र बोस ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। कांग्रेस से त्यागपत्र देने के बाद उन्होंने 'फॉरवर्ड ब्लॉक' नाम से एक नई पार्टी का गठन किया। 22 जून, 1939 को मुंबई में फॉरवर्ड ब्लॉक का सम्मेलन हुआ जिसमें स्वीकृत विधान के अनुसार भारत की स्वतंत्रता के लिए कांग्रेस के अंतर्गत ही कार्य करना था। यह स्वतः उत्कट देश-प्रेम से ओत-प्रोत सुभाष की महानता का ज्वलंत प्रमाण है। वे कांग्रेस को कोई आघात नहीं पहुँचाना चाहते थे। 03 जुलाई, 1940 को उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया। जेल में वह बीमार हो गए। 05 दिसंबर, 1940 को उन्हें जेल से मुक्त करने के पश्चात घर में ही नजरबंद कर दिया गया। 16 जनवरी, 1941 को वह अपने घर से छद्म वेश में निकल गए जिसका पता 26 जनवरी, 1941 को लगा। अदृश्य हो जाने के उनके साहसी, नाटकीय कार्य से राष्ट्रवादियों का उत्साह बढ़ गया।

एक पठान के वेश में भारतीय सीमा पार कर काबुल होते हुए वे जर्मनी पहुँचे। बोस का नाटकीय ढंग से जर्मनी पलायन, वहाँ फ्री इंडिया सेंटर, फ्री इंडिया रेडियो जैसी संस्थाओं की उनके द्वारा स्थापना

और आजाद हिंद सेना का गठन—ये उपलब्धियाँ, अत्युच्च कोटि के कूटनीतिज्ञ के रूप में, उनके अत्युकृष्ट परिपक्व कार्य कौशल का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। वार्ता के दौरान उन्हें आशा थी हिटलर से समझौते की। परंतु हिटलर की संवेदनहीनता के कारण उनके प्रयास विफल हो गए। अतः बोस निराश हो गए, उनका भ्रम दूर हो गया। इसी बीच उन्हें जापान से क्रांतिकारी रासबिहारी बोस का निमंत्रण

मिला। रासबिहारी बोस जो 1912 में हार्डिंग बम कांड में सम्मिलित थे और बाद में जापान चले गए और एक भारतीय सेना का गठन कर

“हमारे शिक्षित वर्ग में आदर्श के प्रति निष्ठा और लगन का अभाव है, इसमें संदेह नहीं। इस भाव-दैन्य का कारण क्या है? कारण है जो हमें शिक्षा देते हैं, वे शिक्षा के साथ हमारे हृदयों में आदर्श का बीज-वपन नहीं करते। अपने भाव-दैन्य के लिए मैं अपने शिक्षित वर्ग और विश्वविद्यालयों के कर्णधारों को मुख्य रूप से जिम्मेदार पाता हूँ। मैं पूछता हूँ क्या हमारे विश्वविद्यालय के प्रांगण में स्वाधीन वातावरण है? जो इस प्रांगण में ज्ञान पाने के लिए विचरते हैं, वे क्या मुक्ति के आदर्श से अनुप्राणित हो पाते हैं?”

जापानियों की युद्ध में सहायता कर रहे थे, बोस से जापान आकर आजाद हिंद आंदोलन की बागडोर उनसे ग्रहण करने का अनुरोध किया। वे वृद्ध हो जाने के कारण अब इसे सँभालने में असमर्थ हो चले थे। रासबिहारी को भारत की स्वाधीनता के निमित्त जापान की उदारतापूर्ण सहायता की आशा थी। सुभाष ने तुरंत इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। जून 1943 में जापान आकर उन्होंने जापानी शिविरों में भारतीय सैनिकों से भेंट की। अपने आकर्षक, चुंबकीय

व्यक्तित्व से उनका हृदय जीत लिया। 60,000 सैनिकों की आजाद हिंद फौज का उन्होंने गठन किया। उन्होंने सैनिकों का आह्वान करते हुए उन्हें यह प्रेरक संदेश दिया, “तुम मुझे रक्त दो, मैं तुम्हें आजादी दिलाने का वचन देता हूँ।” उन्होंने सेना का नेतृत्व करते हुए बर्मा के मार्ग से जापानी सेना के साथ भारत में प्रवेश किया। युद्ध के एक मोर्चे से वह दूसरे पर जाते, सैनिकों को संबोधित करते और उनमें देशभक्ति का संचार करते। उन्होंने टोक्यो से मनीला की वायुयान से यात्रा की। वहाँ से सिंगापुर गए और उसके बाद वह रेन्यॉस गए। युद्धरत सैनिकों के लिए उनका आह्वान मंत्र था, “दिल्ली चलो”। फरवरी 1944 से अप्रैल 1945 तक मित्र राष्ट्रों के विरुद्ध आजाद हिंद सैनिकों ने वीरतापूर्ण अभियान चलाया। वह भारतीय प्रदेश में प्रविष्ट हो गए।

दुर्भाग्यवश 18 अगस्त, 1945 को जब वह एक बम्बार वायुयान में दोपहर दो बजे सिंगापुर से टोक्यो जा रहे थे, ताइहोकू (जो फॉर्मूसा में है) में उनका विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया। वे गंभीर रूप से घायल हो गए। उनका शरीर बहुत झुलस चुका था। अंततः मध्य रात्रि 12 बजे उन्होंने अपना यशस्वी शरीर त्याग दिया। उस विमान में कर्नल हबीबुर्रहमान उनके एकमात्र साथी थे। उन्हें भी हाथों में साधारण घाव लगे। 21 अगस्त, 1945 को ताइपेह की श्मशान भूमि

में उनका दाह संस्कार किया गया। परंतु उनकी मृत्यु के इस प्रकरण को कई लोगों ने असत्य, मनगढ़ंत बताया था। अतः कर्नल शाहनवाज और जस्टिस जी.डी खोसला की अध्यक्षता में दो पृथक आयोगों का गठन किया गया। इसका गठन इस प्रकरण से संबद्ध तथ्यों का पता लगाने के लिए हुआ था। दोनों आयोगों ने उनकी मृत्यु की पुष्टि करते हुए स्पष्ट निर्णय दिया। पर नेताजी राष्ट्र के प्रति निःस्वार्थ सेवा, राष्ट्र के प्रति अनुपम भक्ति तथा समर्पण भाव के कारण देश की जनता के दिलों में सदैव अमर रहेंगे। सरोजिनी नायडू के शब्दों में, “नेताजी का नाम भारत के स्वाधीनता इतिहास का अभिन्न अंग है।”

कोलकाता विश्वविद्यालय के युवा सम्मेलन में 1929 में नेताजी ने जो कुछ कहा था, वह आज भी उतना ही सच है। उन्होंने कहा था—“इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि सभी देशों में, विशेषतः हमारे इस अभागे देश में मध्यवर्गीय शिक्षित वर्ग ही देश की रीढ़ है। वे मात्र मुक्तिपथ के ही अग्रदूत नहीं हैं, बल्कि गणतंत्र के भी अग्रदूत हैं। जब तक जन साधारण में स्वाभाविक जागरण नहीं आता तब तक शिक्षित वर्ग को ही गण-आंदोलन का नेतृत्व करना होगा। अब भाँति-भाँति के संगठन का कार्य इस शिक्षित वर्ग को ही आगे बढ़कर करना होगा। इन्हीं कारणों से मैं मध्यवर्गीय शिक्षितों के अभाव अभियोग के विषय में कुछ कहने की इच्छा रखता हूँ।”

“पहली बात, उनमें भाव के अभाव की है। हमारे शिक्षित वर्ग में आदर्श के प्रति निष्ठा और लगन का अभाव है, इसमें संदेह नहीं। इस भाव-दैन्य का कारण क्या है? कारण है जो हमें शिक्षा देते हैं, वे शिक्षा के साथ हमारे हृदयों में आदर्श का बीज-वपन नहीं करते। अपने भाव-दैन्य के लिए मैं अपने शिक्षित वर्ग और विश्वविद्यालयों के

कर्णधारों को मुख्य रूप से जिम्मेदार पाता हूँ। मैं पूछता हूँ क्या हमारे विश्वविद्यालय के प्रांगण में स्वाधीन वातावरण है? जो इस प्रांगण में ज्ञान पाने के लिए विचरते हैं, वे क्या मुक्ति के आदर्श से अनुप्राणित हो पाते हैं?”

> **“ शिक्षित वर्ग में बेकारी की समस्या कितनी भयानक है, उसे भिन्न-भिन्न कारणों से हम जान पाते हैं। यह बात संभवतः सभी जानते हैं कि हमारे शिक्षित वर्ग की आर्थिक अवस्था हमारे देश के किसानों से भी बदतर है। नौकरियों के जरिए उनका अभाव मिट सकता है। इसकी आशा हमें नहीं है क्योंकि शिक्षितों की संख्या की अपेक्षा नौकरी की संख्या बहुत कम है। अतः यह अनिवार्य है कि आगामी 30-40 वर्षों में शिक्षित वर्ग को भूखों मरना पड़ेगा। परंतु आज से ही यदि हम नौकरी की आशा छोड़ दें और व्यवसाय-वाणिज्य की ओर ध्यान लगाएँ तो हम मर कर भी अपनी संतानों के लिए कुछ कर सकेंगे। यदि सदा नौकरी की आशा में घूमते रहे तो हम स्वयं तो मरेंगे ही, साथ ही अपनी संतानों के मरण का भी आयोजन कर जाएँगे। हमारे मारवाड़ी भाइयों ने 40-50 वर्ष पूर्व जिस प्रकार बिना पूँजी और हीन अवस्था में व्यवसाय-क्षेत्र में प्रवेश किया था, हमें भी ठीक उसी प्रकार उसी अवस्था में व्यवसाय में प्रवेश करना होगा और स्वयं के अध्यवसाय, चरित्र-बल और कष्ट-सहिष्णुता के द्वारा व्यवसाय में कृतित्ववान होना होगा। ”**

“भाव-दैन्य के बाद अन्न-अभाव की बात उठती है। शिक्षित वर्ग में बेकारी की समस्या कितनी भयानक है, उसे भिन्न-भिन्न कारणों से हम जान पाते हैं। यह बात संभवतः सभी जानते हैं कि हमारे शिक्षित वर्ग की आर्थिक स्थिति हमारे देश के किसानों से भी बदतर है। नौकरियों के जरिए उनका अभाव मिट सकता है। इसकी आशा हमें नहीं है क्योंकि शिक्षितों की संख्या की अपेक्षा नौकरी की संख्या बहुत कम है। अतः यह अनिवार्य है कि आगामी 30-40 वर्षों में शिक्षित वर्ग को भूखों मरना पड़ेगा। परंतु आज से ही यदि हम नौकरी की आशा छोड़ दें और व्यवसाय-वाणिज्य की ओर ध्यान लगाएँ तो हम मर कर भी अपनी संतानों के लिए कुछ कर सकेंगे। यदि सदा नौकरी की आशा में घूमते रहे तो हम स्वयं तो मरेंगे ही, साथ ही अपनी संतानों के मरण का भी आयोजन कर जाएँगे। हमारे मारवाड़ी भाइयों ने 40-50 वर्ष पूर्व जिस प्रकार बिना पूँजी और हीन अवस्था में व्यवसाय-क्षेत्र में प्रवेश किया था, हमें भी ठीक उसी प्रकार उसी अवस्था में व्यवसाय में प्रवेश करना होगा और स्वयं के अध्यवसाय, चरित्र-बल और कष्ट-सहिष्णुता के द्वारा व्यवसाय में कृतित्ववान होना होगा।”

“हमारे राष्ट्रीय अधःपतन के अनेक कारण हैं। उनमें से एक प्रमुख कारण यह है कि हमारे देश में व्यक्ति और जाति के जीवन में प्रेरणा या पहल की कमी है। हम बिना बाध्यता के या बिना सिर पर पड़े कुछ करना नहीं चाहते। बहुत बार वर्तमान की उपेक्षा कर भविष्य पर दृष्टि टिकाए रखकर काम करना पड़ता है, कभी-कभी वास्तव की दीनता ठुकराकर आदर्श की प्रेरणा से जीवन हँसते-हँसते न्योछावर करना आवश्यक होता है—इसे हम कार्य-रूप में स्वीकार नहीं करना चाहते। इसलिए प्रेरणा या पहल के अभाव में व्यक्ति और राष्ट्र की इच्छाशक्ति क्रमशः निस्तेज एवं क्षीण हो जाती है। व्यक्ति और राष्ट्र की इच्छाशक्ति पुनः जाग्रत किए बिना कुछ महान करना संभव नहीं है। मात्र आदर्श की प्रेरणा से ही इच्छाशक्ति जागती है। हम आदर्श भूल गए हैं, हमारी इच्छाशक्ति क्षीण हो गई है। वर्तमान की भाव-दीनता मिटाकर अपने निजी जीवन में आदर्श की प्रतिष्ठा किए बिना हमारी प्रेरणा-शक्ति जाग नहीं सकती और प्रेरणा-शक्ति के जागे बिना विचार-शक्ति और कार्य-क्षमता पुनर्जीवित नहीं हो सकती।”

“हमारा कर्तव्य क्या है, अब इसे खोलकर कहने की आवश्यकता नहीं है। हम नए भारत के निर्माता हैं। अतएव आओ, हम सभी मिलकर इस पवित्र मातृ-यज्ञ में योग दें। माँ पुनः राजराजेश्वरी के सिंहासन पर आरूढ़ हों। आज की भिखारिणी माँ को षडैश्वर्यसंपन्ना दशभुजा के रूप में देखकर हमारे नेत्र शीतल हों, जीवन सार्थक और धन्य हो। अतः आओ भाइयो! अब पलमात्र भी विलंब न कर सर्वस्व बलिदान के लिए मातृ-चरण में समवेत हों।”

आजादी की असली लड़ाई

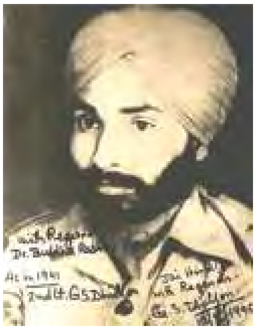

कर्नल गुरुबख्श सिंह ढिल्लन का जन्म 18 मार्च, 1914 को पंजाब के अल्गो ग्राम में हुआ था। उनकी मृत्यु 06 फरवरी, 2006 को ग्वालियर के सरकारी जया-आरोग्य चिकित्सालय में हुई। वे अंग्रेजी फौज में सिपाही थे, किंतु जब भारतीय स्वतंत्रता संग्राम चरम पर था और नेताजी सुभाष चंद्र बोस को रासबिहारी बोस ने आजाद हिंद फौज का सेनापति बना दिया, तब ढिल्लन और उन जैसे हजारों ब्रिटिश सैनिक आजाद हिंद फौज में शामिल हो गए। नेताजी ने उन्हें कर्नल का दायित्व सौंपते हुए 'नेहरू ब्रिगेड' की कमान सौंप दी। इंफाल के मोर्चे पर सीमित संसाधनों के साथ ढिल्लन ने फिरंगी सेना को जबरदस्त चुनौती दी। कई जगह फिरंगी हुकूमत का झंडा उतारकर आजाद हिंद फौज का झंडा फहराया, किंतु वे अपने उद्‍देश्य में सफल नहीं हो पाए और उन्हें सिंगापुर में युद्धबंदी बना लिया गया। बाद में ब्रिटिश सेना ने उन पर कोर्ट मार्शल की कार्रवाई की थी। सर तेज बहादुर सप्रू के नेतृत्व में भूलाभाई देसाई और जवाहरलाल नेहरू जैसे कई वकील बचाव पक्ष में खड़े हुए। देश में इनके पक्ष में मुक्ति के लिए बड़े आंदोलन हुए। वकीलों की दलीलों और जनदबाव में इन्हें बरी करना पड़ा। उक्त कोर्ट मार्शल पर आधारित एक फिल्म 'रागदेश' भी बनी। गुरबख्श सिंह को सन् 1998 में भारत सरकार द्वारा 'पद्‍म भूषण' से सम्मानित किया गया। कोटा ग्राम में उनकी समाधि है, जहाँ हर वर्ष उनकी पुण्यतिथि जनता और सरकार मिलकर मनाती है। कर्नल गुरुबख्श सिंह ढिल्लन से प्रमोद भार्गव की बातचीत—

वह सुबह बहुत खुशगवार थी, जब मैं अपने पूज्य गुरुवर, लोकप्रिय कवि तथा युवाओं के प्रेरक उन्नायक डॉ. परशुराम शुक्ल 'विरही' के साथ शहर की चहल-पहल से 10-12 कि.मी. दूर नितांत एकांत में एक ऊँचे पहाड़ की तलहटी में हरियाली से आच्छादित जंगल के बीच फैले ढिल्लन कृषि फार्म की ओर रवाना हुआ था। स्वतंत्रता आंदोलन के वीर-धीर सिपाहियों से मिलने की कल्पना मात्र शरीर में रोमांच और उत्तेजना पैदा कर जाती है, फिर मैं तो उस महान, प्रखर, तेजस्वी, मतवाले योद्धा सेनापति सुभाष के सिपाही से मिलने जा रहा था, जो नेताजी का संकेत पाते ही पूरे आत्मविश्वास के साथ ब्रिटिश साम्राज्य की बर्बर सत्ता को हिंदुस्तान की सरजमीं से खदेड़ने के लिए मुट्ठी भर साथियों के साथ टकरा गया।

प्रमोद भार्गव

जन्म : 1956, अटलपुर, शिवपुरी, म.प्र.।

शिक्षा : हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर।

प्रकाशन : प्यासभर पानी, पहचाने हुए अजनबी, शपथ-पत्र एवं लौटते हुए, शहीद बालक, 1857 का लोक-संग्राम और रानी लक्ष्मीबाई सहित कई पुस्तकें प्रकाशित। वन्य जीवन पर 10 लघु-पुस्तिकाएँ प्रकाशित।

सम्मान : चंद्रप्रकाश जायसवाल सम्मान, मध्य प्रदेश शासन का रतनलाल जोशी आंचलिक पत्रकारिता पुरस्कार, धर्मवीर भारती सम्मान।

संपर्क : मोबाइल— 9425400224

ई-मेल— pramod.bhargava15@gmail.com

74 वर्षीय मजबूत हाथ

हम ढिल्लन फार्म की सीमा में प्रवेश कर ढिल्लन साहब के निवास के निकट पहुँचते हैं। कर्नल ढिल्लन बाहर निकलकर 'जय हिंद' के उद्‍घोष के साथ हाथ मिलाते हुए हमारा अभिवादन करते हैं। सख्ती से हाथ मिलाने पर आभास होता है कि ढिल्लन साहब के 74 वर्षीय हाथों में अभी भी बला की शक्ति और दृढ़ता है। जरूर इन हाथों ने कभी बड़ी कठोरता ने राइफलों को थामा होगा। ढिल्लन साहब का शरीर इस उम्र में भी चुस्त-दुरुस्त और युवाओं की तरह फुर्तीला है, उनके चेहरे पर घने सफेद लंबे-लंबे बाल बहुत ही सुहाते हैं। प्रसन्नमन कर्नल ढिल्लन भारत और एशिया के नक्शे सामने रखकर लड़ाइयों से संबंधित स्थानों को छड़ी से दिखाते हुए आजाद हिंद फौज की लड़ाइयों की बात प्रारंभ करते हैं। नेताजी ने जब 'आरजी हुकूमते आजाद हिंद' (स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार) बना ली और उसे आठ देशों की मान्यता प्राप्त हो गई, तब हम लोग नए जोश, उमंग और उत्साह के साथ आगे बढ़े। उस समय जो लड़ाइयाँ हुई हैं, उनमें दो मोर्चे खास थे—एक, दक्षिणी जो 'अराकॉन का मोर्चा' कहलाता था और दूसरा, उत्तरी जो 'इंफाल का मोर्चा' कहलाता था। इस समय मुख्य युद्ध इंफाल में हुआ। हमारे पहले डिवीजन ने आर्मी कमांडर कर्नल मोहम्मद जमान कियानी के नेतृत्व में

अराकॉन चटगाँव की ओर से आगे बढ़कर इंफाल को घेरा, कर्नल शाहनवाज ने 'सुभाष ब्रिग्रेड', कर्नल इनायत कियानी ने 'गांधी बिग्रेड' और कर्नल गुलजारा सिंह ने 'आजाद बिग्रेड' को लेकर आगे बढ़ते हुए इंफाल को घेर लिया।

जीती हुई जमीन पर तिरंगा

आजाद हिंद फौज लगातार लड़ती हुई आगे बढ़ती रही। सभी सेनानी उस समय हर्षोल्लास से भर गए जब 18 अप्रैल, 1943 को शौकत अली ने इंफाल से 23 मील दूर लोकट्टी झील के किनारे मुरैन (उस समय मणिपुर रियासत में) पर तिरंगा झंडा फहराया। आगे बढ़कर उन्होंने श्याम बाजार पर कब्जा किया और आजाद हिंद फौज रेड हिल पर पहुँच गई, यहाँ पर बहुत घमासान लड़ाई हुई। यह स्थान इंफाल से 10 मील दूर है, दूसरी तरफ से इनायत कियानी की रेजिमेंट ने इंफाल

से 11 मील चलकर पलेल हवाई अड्डे पर कब्जा कर लिया। इस लड़ाई से प्रसन्न होकर नेताजी ने कैप्टन मनसुखलाल को दो तमगे दिए—एक, 'वीर-ए-भारत' और दूसरा, 'सरदार-ए-जंग'। इस तरह इंफाल आजाद हिंद फौज के कब्जे में आ गया। अंग्रेजों ने अपनी सेना को आत्मसमर्पण करने का आदेश दे दिया। अंग्रेजों पर आजाद हिंद फौज की इस विजय ने यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय सिपाही युद्धक्षेत्र में मातृभूमि के बंधन काटने के लिए कैसी प्रशंसनीय युद्ध-क्षमता रखता है। ऐसी विषम स्थिति में अंग्रेजों ने कोलंबो में लॉर्ड माउंटबेटन के मुख्यालय को इंफाल पर आजाद हिंद फौज का कब्जा हो जाने का संदेश वायरलेस से भिजवाया। माउंटबेटन अंग्रेजी सेना के सुप्रीम कमांडर थे, उन्होंने तुरंत हथियारों से लैस पाँच नंबर इंडियन डिवीजन इंफाल में हवाई जहाजों से गिरवाने का आदेश दिया। इंफाल की धरती के ऊपर भयंकर गड़गड़ाहट के साथ हवाई जहाज मंडराने लगे और उनके गर्भ से कहर बरसाते हुए आधुनिक हथियारों से लैस तथा सुरक्षा कवचों से ढँके सिपाही क्रमशः नीचे गिरने लगे।

यह आजाद हिंद फौज का बहुत दुर्भाग्यपूर्ण समय था, इसी प्रतिकूल परिस्थिति में मूसलाधार पानी भी बरसने लगा। हमारी एल अप सी सप्लाई लाइन भी बहुत आगे निकल चुकी थी, अतः आगे बढ़ने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता था। इसी समय आजाद हिंद फौज को पीछे हटने का हुक्म भी मिल गया। आजाद हिंद फौज की पीछे हटने की घटना दिल दहला देने वाली दुखद कहानी है। बर्मा के मैदानों में बहुत दलदल है। दलदल से बचकर पीछे हटना मुश्किल बात थी, इस समय कई कारुणिक दृश्य सामने आए। एक साथी दलदल में फँस गया, दूसरा उसे निकालने लगा तो वह भी दलदल में धँसने लगा, तब पहला कहता है, "तू तो जा कम-से-कम तू तो जाकर घर कह देना कि मैं आजादी के लिए लड़ा, मातृभूमि के लिए लड़ा।" इस समय आजाद हिंद फौज का बहुत नुकसान हुआ। हमारे लगभग सात हजार सिपाही मारे गए और जापानियों के सत्तर हजार।

मैं उस समय 'नेहरू बिग्रेड' में स्टाफ ऑफीसर था। हमारी बिग्रेड मंडली रिजर्व में थी। आपातकाल के समय आवश्यकतानुसार हमारी सेवाएँ ली जातीं। सितंबर 1944 के अंतिम सप्ताह में रंगून में मेरी नेताजी से मुलाकात हुई। नेताजी ने मुझे तमाम तात्कालिक परेशानियों से अवगत कराते हुए 'नेहरू बिग्रेड' की कमान सौंपने का आग्रह करते हुए पूछा, "क्या आप यह जिम्मेदारी लेने का तैयार हैं?" नेताजी का प्रश्न सुनकर मैं असमंजस में पड़ गया। अंततः मैंने पूछा, "नेताजी इस वक्त अंग्रेज आगे बढ़ रहे हैं, हम पीछे हट रहे हैं। असली लड़ाई तो हम इंफाल में हार गए, अब हम किसलिए लड़ें?" यह एक बहुत गहरा प्रश्न था। क्योंकि जिसे युद्धस्थल में लड़ना है, सैनिकों को आदेश देना है, उस कमांडर को यह ज्ञान होना चाहिए कि सेनापति का इरादा क्या है, मकसद क्या है, क्या हासिल करने के लिए लड़ना है? आखिर क्यों जवानों को जान की बाजी लगानी है? यहाँ नेताजी का जवाब बहुत आत्मविश्वास और जोश से भरा हुआ था, "हमें हिंदुस्तान की आजादी की कीमत चुकानी है। हमें इससे कोई मतलब नहीं कि अंग्रेज आगे बढ़े या पीछे हटे। हमारा वह हर सूरत में दुश्मन है। जापानी की मदद है तो ठीक है, बर्मीज की मदद है तो ठीक है। कोई मदद करे अथवा न करे, हमें तो बस लड़ना है।" मुझे ठीक से सोचने-विचारने के लिए चार दिन का समय दिया गया।

नेताजी से लंबी मुलाकात

चार दिन के बाद 29 अक्तूबर, 1944 की शाम मैं नेताजी के कमरे में पहुँचा। लगभग 10X10 वर्गफुट का कमरा था नेताजी का। एक तरफ पलंग लगा हुआ था। उसी की बगल में ड्रेसिंग टेबल थी। दूसरी तरफ उनके पढ़ने-लिखने के लिए कुर्सी-मेज रखे हुए थे। मेज पर तमाम फाइलें और कागज फैले हुए थे। नेताजी खिड़की के प्रकाश में कोई कागज पढ़ रहे थे। नेताजी फाइल रखकर दरवाजे के पास आकर मुझसे हाथ मिलाते हुए बोले, "हाँ तो मेजर साहब, आपसे मिलने के बाद मैंने महसूस किया कि आपको नेहरू बिग्रेड की कमान पेश की जाए।" मैं तो मन बनाकर ही आया था, फिर तीन बटालियन की कमान मिलना कोई छोटी बात भी नहीं थी, मैं जोश में मतवाला-सा था। अतः झट से बोला, "आई एक्सपेक्टेड..." मैं अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि नेताजी जोर से बोले,

"होल्ड डाउन, बिफोर यू एक्सपेक्टेड.., क्या आपने तमाम तकलीफों को सोच-समझ लिया है?"

"जी हाँ।"

"तो क्या सारी तकलीफें जानते हुए भी यह जिम्मेदारी लेने को तैयार हैं?"

"जी हाँ।"

"तब ठीक है, आपको 'नेहरू बिग्रेड' की कमान सौंपी जाती है।"

अब मेरी सोच एकदम बदल गई। मैं बिग्रेड कमांडर हूँ, मिंजान में हूँ, मेरे उधर यूनिट्स हैं, मेरा दुश्मन किधर है। यह सब सोचते हुए मैं बोला, "नेताजी, मेरा दुश्मन से मिलाप कब होगा?" "आपके और दुश्मन के बीच में कोई निश्चित मोर्चाबंदी नहीं है। आपको ही यह

अंदाजा लगाना है कि दुश्मन आप तक पहुँचने में कितना वक्त लेगा? वैसे तो यह उसकी रफ्तार के ऊपर निर्भर है, किंतु मेरा अनुमान है दुश्मन को आप तक पहुँचने में 50-60 दिन लग सकते हैं। तैयारी के लिए इतना ही समय संभवतः मिल सकेगा।"

"तो सर मैं आपसे अपनी बिग्रेड के डिवीजनल हेडक्वार्टर को बिना इजाजत के कुछ तब्दीलियाँ करने की स्वीकृति चाहता हूँ?" "हाँ, पर जरा सोच-समझकर, नरमी बरतते हुए परिवर्तन करना।"

"क्या बिग्रेड कमांडर को जो अनऑडिटेड फंड मिलता है, उसमें से दस हजार रुपया मुझे आप यहाँ रंगून में दे सकते हैं?"

"हाँ, परसों आपको यह रुपया मिल जाएगा, लेकिन क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप यह पैसा यहाँ क्यों चाहते हैं, जबकि कमान का चार्ज मिलने पर नियमानुसार आपको धन मिल ही जाना है?"

"बात यह है कि इधर मेरे इंफाल ऑपरेशन के कुछ घायल सिपाही अस्पतालों में हैं, उनसे डॉक्टरों ने कहा है कि रोज एक किलो दूध पियो, अंडा खाओ, तो मैं अपने सिपाही से कह सकूँ कि लो बेटा सौ रुपये हैं, दुध पियो, अंडा खाओ और भले-चंगे होकर युद्धभूमि में आ जाओ।"

"गुड आइडिया। परसों चार बजे शमसेर सिंह आपको रुपया पहुँचा देगा।" नेताजी ने मुझसे हाथ मिलाया। उस समय मेरे आखिरी लफ़्ज़ थे, "नेताजी अगर मुझे 30-40 दिन मिल गए तो आपको पूरा विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आपकी आँखें किसी के आगे नीची नहीं होने दूँगा।" नेताजी के सान्निध्य से मैं स्वाभिमान से भर उठा था। इस बार नेताजी ने सख्ती के साथ 'जय हिंद' कहते हुए हाथ मिलाया और मैं चल दिया।

जनवरी 1945 के अंतिम सप्ताह में जब हमने मिंजान पर अच्छी तरह से मोर्चा साध लिया तब नौ दिन देरी से मुझे अचानक आदेश मिला कि "मिंजान को छोड़कर दक्षिण दिशा में सौ मील आगे नियंगू और पगान की ओर बढ़ो।" वहाँ इस समय अंग्रेजों के 'फॉरवर्ड एलीमेंट' पहुँच चुके थे। ये 'फॉरवर्ड एलीमेंट' 14वीं सेना थी। इसके कमांडर जर्नल सर विलियम स्लिम थे, जो बराबर आगे बढ़ रहे थे। इनका मुकाबला करने के लिए मैं नौ दिन देरी से आगे बढ़ा। मैं इरावदी नदी के विशाल तट पर पूर्व की ओर अपने सिपाहियों के साथ था। एक पलटन को मैंने दरिया के दायें तरफ, एक को बायीं तरफ और एक को रिजर्व में रखा। इस तरह युद्धक तकनीकी दृष्टि से हमने बहुत अच्छा मोर्चा साध लिया और अंग्रेजों को दस दिन तक दरिया पार नहीं करने दिया। अंग्रेजों ने रात में दरिया पार करने की बार-बार कोशिश की। एक रात उनके कुछ आदमी मारे भी गए। 13 फरवरी, 1945 को पूरे दिन अंग्रेजों ने कारपेट बॉमिंग की। लेकिन हमारे मोर्चे इतने सुरक्षित स्थानों पर थे कि हम कुदरत की कृपा से बच गए और हमारा बहुत कम नुकसान हुआ।

सफेद झंडा

अब मैं सहायता के लिए जापानी कंपनी से संपर्क करने गया, लेकिन जापानी कंपनी आगे बढ़ चुकी थी। मैं उनके हेडक्वार्टर पर पहुँचा, यहाँ मैं घिर गया। इधर अंग्रेजों ने अपनी पूरी शक्ति के साथ धावा बोल दिया था। उधर बहुत पहाड़ियाँ थीं। कोई 300 गज की दूरी पर मुझे पहाड़ियों से उतरते हुए अंग्रेज आते दिखे, लेकिन सौभाग्य से जिस पहाड़ी पर मैं खड़ा था, उसमें एक गुफा थी, मैं इसी गुफा में से

बचकर अपनी बटालियन के पास पहुँचा। यहाँ यह देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया कि मेरा बटालियन कमांडर सफेद झंडा दिखाकर समर्पण का संकेत दे चुका है। मुझे बहुत गहरा धक्का लगा और मैं पीछे हटकर रिजर्व वाली जगह पर गया। मैं इस वक्त बायीं वाली फौज से कटा हुआ था। दायीं ने समर्पण का संकेत दे दिया था।

बायीं वाली फौज से संपर्क साधने के लिए हमारे पास कोई वायरलेस नहीं था। कार, साइकिल वगैरह भी नहीं थी। अब यदि फौज से संपर्क

“हम लोग पोपा हिल पर गए वहाँ शाहनवाज खान और प्रेमकुमार सहगल भी अपनी-अपनी कमानों के साथ थे। नेताजी के पास हमारी प्रत्येक गतिविधि का समाचार भी बराबर पहुँच रहा था। मेरी कमान के कुछ लोग भागकर नेताजी के पास पहुँच गए थे। नेताजी ने उन्हें डाँटते हुए उनकी एक अलग कंपनी बना दी थी। कैप्टन रितूड़ी ने मेरी युद्धनीति और सेनानायकत्व की बहुत तारीफ की। यहाँ तक कि मुझे ‘देवता’ का दर्जा दे दिया।”

करना है तो पैदल ही पहुँचिए। तीन तरफ से अंग्रेज आगे बढ़ रहे थे। मैं इस वक्त बहुत ज्यादा परेशानी महसूस कर रहा था। अंततः मैंने अपने सिपाहियों का दृष्टिकोण जानने के लिए सबको इकट्ठा किया।

इसी समय मेरे मन में एक बार इरावदी दरिया के किनारे देख आने का विचार आया। इरावदी की तरफ ही एक बहुत बड़ा अनंदा पगोडा (बौद्ध मंदिर) है, सैकड़ों वर्गगज में फैला हुआ। यहीं हमारे राशन का इंतजाम था। अभी वहाँ बहुत राशन सुरक्षित था। जितना हमारे साथियों से बन सका, उन्होंने उठा लिया, बाकी बर्मियों को उठा ले जाने को कह दिया। बर्मी हमारी बहुत मदद करते थे। अंग्रेजों की गतिविधियों की जानकारी भी यथासमय, यथासंभव देते रहते थे।

अनंदा पगोडा से जब हम इरावदी की ओर बढ़ रहे थे, तब नीले आसमान के आगोश से सूरज निकल रहा था और मेरा अंतर्मन निराश होकर डूब रहा था। युद्ध की हार मुझे कचोट रही थी। बस एक ही आधार था जिसके संबल से मैं जिंदा था। अभावग्रस्त होने के बावजूद मैंने अंग्रेजों को 12-13 रोज रोके रहा। आखिर तीस हजार फिरंगी सेना के सामने हम सात-आठ सौ टिकते भी कब तक? लेकिन सच बात तो यह है कि मैं महसूस कर रहा था कि काश! यह सूरज देखने के लिए मैं जिंदा ही न होता। शहीद हो गया होता। यह मेरी जिंदगी का एक भयानक सूरज था। उदास मन और थके पाँव से मैं आगे बढ़ रहा था, तभी गाँव का नंबरदार मेरे पास आकर बोला, “शेगूजी (बड़े सरदार) तू किधर को जा रहा है, इधर तो अंग्रेज है।” मेरे आदमी सब पीछे चले गए। हम यहाँ से मार्ग बदलकर आगे बढ़ने लगे।

दो रास्ते

चलते-चलते सूरज डूबने लगा। उस समय मेरे साथ 25 सिपाही थे और तीन राइफलें। बाकी स्ट्रेचर उठाने वाले थे, जो घायल सैनिकों को लेकर चल रहे थे। मैंने गाड़ी पर चढ़ते हुए डॉक्टर कृष्णन से कहा, “यह रास्ता है, फिर भी कहीं पूछना पड़े तो पूछ लेना।” इस समय मैं बहुत चिंतित था, सोच रहा था, “आखिर मैं जा कहाँ रहा हूँ? मेरे जाने का मकसद क्या है? क्या नेताजी मुझे पुनः लड़ने का मौका देंगे।” यही सोचते हुए गाड़ी पर चढ़कर मैं सामान के ऊपर लेट गया। सोते-सोते मैं स्वप्न देखने लगा, नेताजी मेरा इंतजार कर रहे हैं। मेरा बड़ा भारी स्वागत होता है। नेताजी स्वयं मुझसे आकर मिलते हैं। इसी समय डॉ. कृष्णन मुझे जगाते हुए बोला, “ये दो रास्ते सामने हैं, किधर को जाना है?”

मेरे अंदर एक नए विश्वास का स्फुरण हुआ और मुझे लगा, अभी मेरी जरूरत है। हम लोग पोपा हिल पर गए वहाँ शाहनवाज खान और प्रेमकुमार सहगल भी अपनी-अपनी कमानों के साथ थे। नेताजी के पास हमारी प्रत्येक गतिविधि का समाचार भी बराबर पहुँच रहा था। मेरी कमान के कुछ लोग भागकर नेताजी के पास पहुँच गए थे। नेताजी ने उन्हें डाँटते हुए उनकी एक अलग कंपनी बना दी थी। कैप्टन रितूड़ी ने मेरी युद्धनीति और सेनानायकत्व की बहुत तारीफ की। यहाँ तक कि मुझे ‘देवता’ का दर्जा दे दिया। अंततः नेताजी ने मेरी हार को नियति का विधान मान लिया।

यहाँ जो बात मेरे खिलाफ जा रही थी, वह भी मेरे हक में आ गई। नेताजी ने फिर उनसे पूछा, “बताओ, अब तुम्हें क्या सजा दी जाए?” तो सबने कहा, “नेताजी हमें फिर से कर्नल ढिल्लन के पास भेज दिया जाए।” नेताजी कहते हैं, “अगर ढिल्लन स्वीकृति देंगे तो मैं सिर्फ सिफारिश कर सकता हूँ।” नेताजी की मेरे पास सिफारिशी चिट्ठी आई। मुझे तो उन्हें अपने साथ लेने में कोई आपत्ति थी ही नहीं। चार सौ सैनिकों का साथ मिल जाने से मेरी तो ताकत और बढ़ गई। फिर अंत तक किसी ने मेरा साथ नहीं छोड़ा।

(यह बातचीत 13 से 19 मार्च, 1988 के ‘धर्मयुग’ से ली गई है।)

नेताजी से संबंधित डिजिटल प्लेटफॉर्म

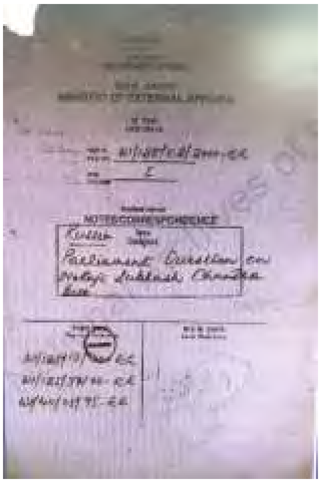

पिछले सात दशकों से नेताजी सुभाष चंद्र बोस से जुड़े गोपनीय दस्तावेजों को सार्वजनिक करने की माँग की जा रही थी। भारत सरकार ने वर्ष 2015 में इस ओर सकारात्मक कदम उठाते हुए राष्ट्रीय अभिलेखागार को 33 फाइलें सौंपीं। इसके बाद प्रधानमंत्री कार्यालय, गृह मंत्रालय और विदेश मंत्रालय के सहयोग से यह सिलसिला अनवरत जारी है। पहले चरण में प्रधानमंत्री ने वर्ष 2016 में लगभग 100 फाइलों को सार्वजनिक करने के लिए इनके डिजिटल रूप को http://www.netajipapers.gov.in वेबसाइट पर जारी किया। वर्तमान में राष्ट्रीय अभिलेखागार के महत्वपूर्ण सहयोग से नेताजी से संबंधित 300 से अधिक डिजिटल फाइलें सार्वजनिक की जा चुकी हैं। पोर्टल पर ये फाइलें डिजिटल रूप के साथ पीडीएफ में डाउनलोड करने के लिए भी उपलब्ध हैं, ताकि इनका अध्ययन व विश्लेषण सरल व सहज रूप से किया जा सके। राष्ट्रीय अभिलेखागार का यह कदम उन बुद्धिजीवियों और शोधकर्ताओं के लिए बहुत उपयोगी साबित हो रहा है, जो नेताजी से जुड़े रहस्यों के बारे में शोध कर रहे थे। इससे उनके शोधकार्य में तेजी आई है। वेबसाइट पर नेताजी के हवाईजहाज दुर्घटना व उनकी मत्यु के अन्य कारणों का पता लगाने के लिए न्यायाधीश मुखर्जी, शाहनवाज, न्यायाधीश खोसला आदि द्वारा समय-समय बिठाई गई जाँच समितियों की रिपोर्ट्स, उनके गायब होने, जापान के रैंकोजी मंदिर में रखी उनकी अस्थियों को भारत लाने, सुरेश चंद्र बोस द्वारा विदेश मंत्रालय को दिया असहमति पत्र, विदेशों में दिए गए नेताजी के भाषणों पर संसदीय चर्चा, संसदीय कार्यवाही के दौरान पूछे प्रश्नों का ब्यौरा, आईएनए मेमोरियल के निर्माण, नेताजी की जन्मस्थली कटक के जानकीनाथ भवन से जुड़ी रिपोर्ट, नेताजी को सर्वोच्च नागरिक सम्मान भारत रत्न दिए जाने के संबंध में की गई सिफारिशों से जुड़े दस्तावेज व सरकारी पत्र के साथ-साथ नेताजी की पत्नी और उनकी बेटी अनीता बोस से जुड़े गोपनीय सरकारी दस्तावेजों को भी सार्वजनिक किया गया है। इस डिजिटल प्लेटफॉर्म पर न्यायाधीशों, आईएएस व अन्य पदाधिकारियों के प्रधानमंत्री कार्यालय, विदेश मंत्रालय, गृह मंत्रालय आदि को लिखे पत्र भी उपलब्ध हैं, जो नेताजी से जुड़े पूरे प्रकरण व सच्चाई को सामने लाने के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसके साथ ही देश-विदेश के समाचार-पत्रों में प्रकाशित खबरों का संग्रहण भी यहाँ पर उपलब्ध है, जिन्हें पढ़कर भारत व अन्य देशों के शोधकर्ताओं, विचारकों और आमजन के बीच नेताजी की प्रसिद्धि व ख्याति के बारे में जाना जा सकता है।

मोहन शर्मा

जन्म : 25 अप्रैल, 1989, दिल्ली।

शिक्षा : पत्रकारिता एवं जनसंचार में स्नातक, एम.ए. (हिंदी)।

संप्रति : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में कार्यरत।

संपर्क : मोबाइल– 7428007292

ई-मेल : mohanjournalist@gmail.com

नेताजी सुभाष चंद्र बोस पर जारी किए गए डाक टिकट

वह क्रांतिदूत, भारत-सपूत
वह पत्थर था, वह पानी भी
वह परमवीर, पौरूष सुधीर
वह मानी था, बलिदानी भी।
संसार नमन करता जिसको
ऐसा कर्मठ युगचेता था,
अपना सुभाष, जग का सुभाष,
भारत का सच्चा नेता था।

भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने वाले क्रांतिकारियों में नेताजी सुभाष चंद्र बोस का नाम प्रथम पंक्ति के स्वतंत्रता सेनानियों में आता है। वे सच्चे अर्थों में देश पर मर मिटने वाले क्रांतिकारी थे। देशवासियों की दुर्दशा और अंग्रेजों की दमनकारी नीति के कारण उनके हृदय में अंग्रेज सरकार के प्रति प्रतिशोध की भावना प्रबल होती गई और जब अंग्रेजों ने स्वाधीनता की ओर बढ़ते उनके कदमों में जंजीर डालने का प्रयास किया तो वे देश त्यागकर विदेशों की ओर रवाना हो गए। उन्होंने विदेशों में रहते हुए भी देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष जारी रखा।

21 अक्तूबर, 1943 को सुभाष चंद्र बोस ने आजाद हिंद फौज के गठन की विधिवत घोषणा की और सिंगापुर में म्युनिसिपल भवन के सामने आजाद हिंद फौज की संयुक्त परेड का निरीक्षण किया। इसी अवसर पर उन्होंने 'दिल्ली चलो और दिल्ली पर अधिकार करो' का नारा दिया।

23 जनवरी, 1964 को महान राष्ट्रनायक नेताजी सुभाष चंद्र बोस की 67वीं वर्षगाँठ के मौके पर भारत सरकार ने दो विशेष डाक टिकट जारी किए गए। इसमें 15 नए पैसे के पहले डाक टिकट पर नेताजी की तस्वीर तथा आजाद हिंद फौज के प्रतीक चिह्न के साथ उनका हस्ताक्षर भी चित्रित था, जबकि 55 पैसे के दो रंग के डाक टिकट पर नारा लगाते हुए नेताजी और आजाद हिंद फौज के जवानों को चित्रित किया गया था। इस टिकट पर नारा भी अंकित था 'जय हिंद, चलो दिल्ली'। भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में नेताजी का विशिष्ट योगदान रहा है। वे सन् 1938 में हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्ष चुने गए थे। प्रत्येक वर्ष 23 जनवरी को सुभाष चंद्र बोस की जयंती को राष्ट्रीय देशभक्ति दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह देश का दुर्भाग्य रहा कि नेताजी पर डाक टिकट जारी करने में तत्कालीन भारत सरकार ने 17 वर्ष तक इंतजार किया।

उमेश कुमार नीमा

जन्म : 25 मई, 1959, इंदौर।

संप्रति : आईसीआईसीआई बैंक से वरिष्ठ प्रबंधक पद से सेवानिवृत्त। साहित्य, डाक टिकट, इतिहास एवं बैंकिंग पर निरंतर लेखन। 100 से अधिक लेख प्रकाशित।

सम्मान : अंतरराष्ट्रीय डाक टिकट प्रदर्शनी में कांस्य पदक, डाक टिकट पर प्रकाशित पुस्तक पर रजत पदक।

संपर्क : मोबाइल– 8959595740

ई-मेल– umeshneema@gmail.com

अंग्रेजों के दुर्व्यवहारों ने नेताजी के क्रांतिकारी मन को झकझोर डाला था। इंग्लैंड में आई.सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे त्यागपत्र देकर एक गुलाम उच्च अधिकारी से आजादी के सिपाही बन गए। अंग्रेज सरकार ने अनेक बार उन्हें गिरफ्तार किया, पर शेर को पिंजड़े में डाल गीदड़ बनाना संभव नहीं हो सका। अंग्रेज शासन के कड़े पहरे के बावजूद सुभाष बाबू 23 जनवरी, 1941 को अपने कलकत्ता स्थित घर से पठान के वेश में गायब होकर अफगानिस्तान और सोवियत संघ होते हुए पहले बर्लिन और फिर टोक्यो पहुँचे। जापान सरकार और भारतीय क्रांतिकारियों के सहयोग से उन्होंने 21 अक्तूबर, 1943 को आजाद हिंद सरकार की स्थापना की और उसके तुरंत बाद जापान में युद्धबंदियों के रूप में रहे हजारों भारतीय सैनिकों को लेकर आजाद हिंद सेना का निर्माण किया। यह गाथा भी भारतवासियों से छिपी नहीं है, परंतु बहुत कम ऐसे लोग हैं जिन्हें यह पता है कि नेताजी ने सेना और सरकार के उपयोग के लिए डाक टिकट भी तैयार करवाए थे।

सन् 1941 में नेताजी जब अपनी सेना के साथ बर्मा पहुँचे तो उन्होंने यह कल्पना की कि अपने अधिकृत समस्त प्रदेशों में वे आजाद हिंद सरकार के डाक टिकट चलाएँगे। इस उद्देश्य से उन्होंने सन् 1943 में जर्मन सरकार के बर्लिन स्थित रेश प्रिंटिंग प्लांट नामक छापाखाने में कुल दो लाख टिकट छपवाए (कुछ डाक टिकट विशेषज्ञों ने इस संख्या को 1.20 करोड़ बतलाया है)। नेताजी ने इन डाक टिकटों को सुंदर और प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से स्वयं जर्मनी जाकर वर्नर एवं मारिया वान एवस्टर ह्यूडले नामक कलाकारों से उनकी डिजाइन तैयार करवा कुल 10 टिकट छपवाए जिनमें से तीन अपने अंकित मूल्यों पर तथा शेष अधिमूल्य (सरचार्ज) सहित बेचे जाने के लिए थे। इस सरचार्ज का प्रयोग घायल सैनिकों की सहायता के लिए जाना था। आधा आने (हरे), एक आने (किरमिजी) तथा दो-दो आने (लाल रंग) के टिकटों पर हल चलाते एक भारतीय किसान का चित्र अंकित था, जबकि दो आने के भूरे रंग के टिकट पर मशीनगन चलाते एक सिक्ख को चित्रित किया गया था। ढाई आने तथा पाँच आने (ढाई-ढाई) के क्रमशः केसरिया, लाल तथा नीले रंग के टिकटों पर चरखा चलाती भारतीय महिला को प्रस्तुत किया था।

तीन-तीन आने के टिकट पर घायल सैनिक की सेवा करती एक नर्स का चित्र था। इन टिकटों में सर्वाधिक प्रभावशाली थे आठ आने तथा बारह आने-एक रुपये मूल्य वर्ग के वे टिकट, जिन पर भारत के मानचित्र के सामने दासता की जंजीर को टूटते हुए प्रदर्शित किया गया था। उपर्युक्त तीनों टिकट क्रमशः गुलाबी, बैंगनी और मैजेंटा रंगों में मुद्रित किए गए थे। एक रुपये, दो रुपये मूल्यवर्ग का अंतिम टिकट, जिस पर आजाद हिंद का ध्वज ले जाते हुए भारतीय और विदेशी सैनिक का चित्र था, मूल रूप से तीन रंगों—काले, केसरिया व हरे में छापा गया था, परंतु बचत के दृष्टिकोण से इनमें से पहले हरा व फिर केसरिया रंग हटा दिया गया। उपर्युक्त सभी दस टिकट छिद्रित व अछिद्रित दोनों ही तरह से तैयार किए गए थे। केवल अंतिम टिकट अछिद्रित ही रखा गया था।

ये टिकट भी आजाद हिंद के मुख्यालय नहीं पहुँच सका। माना जाता है कि युद्ध समाप्ति पर इन टिकटों की संपूर्ण मात्रा एक जर्मन टिकट विक्रेता द्वारा सीधे मुद्रकों से खरीद ली गई और उसी से ये टिकट विश्व के अन्य टिकट विक्रेताओं और संग्राहकों तक पहुँच गए। अब ये टिकट सरलता से उपलब्ध नहीं हैं। स्व. जाल कूपर के अनुसार, इन टिकटों के उपयोग का एक अवसर नेताजी को मिला था जब सेना ने हिंद महासागर स्थित अंडमान और निकोबार द्वीपों को जीतकर हिंद सरकार को सौंप दिया था, पर तब भी इन टिकटों का चलन संभव नहीं हो पाया।

इन्हीं टिकटों से जुड़ी है आजाद हिंद सरकार के एक और टिकट की कहानी। जर्मनी में छपे उपर्युक्त डाक टिकटों को भारतीय सैनिकों के भारतीय सीमा पार करने के अंतिम प्रयास तक जर्मनी से लाया जाना संभव नहीं हो सकेगा। अस्थायी रूप से काम चलाने के लिए नेताजी ने रंगून की किसी स्थानीय लिथो प्रेस में दो अन्य डाक टिकट भी तैयार करवाए थे। एक पाई और एक आने मूल्य के ये टिकट दो आकारों में तैयार किए गए थे। बड़े आकार के (33x36 मि.मि.) दोनों टिकट नौ अलग-अलग रंगों में छापे गए थे, जबकि छोटे आकार (18x20 मि.मि.) के दोनों टिकटों का रंग क्रमशः मेरून तथा हरा था। इन टिकटों पर लाल किले के एक भाग का चित्र तथा मध्य भाग में बड़े अक्षरों में अंग्रेजी में 'चलो, दिल्ली चलो' अंकित था। टिकट के ऊपरी भाग में अंग्रेजी में ही गोलाकार रूप से 'आरजी हुकूमते आजाद हिंद' अंकित था तथा इसके ठीक नीचे 'प्रोविजनल गवर्नमेंट ऑफ इंडिया' शब्द अंकित थे। इन टिकटों पर न तो कोई जलचिह्न था, न ही इन पर चिपकाने के लिए गोंद ही लगा था। आजाद हिंद फौज

आजादी के अपने मिशन में नाकामयाब रही और मणिपुर सीमा से ही उन्हें पीछे हटना पड़ा। समर्पण के पश्चात 'चलो दिल्ली' टिकट अंग्रेजों के हाथ लग गए। इनमें से अनेक टिकट चोरी हो गए, कुछ नष्ट हो गए और कुछ बिकने के लिए बाजारों तक पहुँच गए।

विश्वभर में जारी डाक टिकटों की मान्य सूची 'स्टैनले गिबन्स कैटलॉग' ने भी आजाद हिंद सरकार द्वारा जारी उपर्युक्त सभी टिकटों को विशेष रूप से सूचीबद्ध किया है जो भी हो, सुभाष बाबू देश के प्रति त्याग और अनेक बलिदानों की भाँति उनके इस मूक बलिदान का यह अध्याय तथा उनके इन प्रचलित टिकटों की गाथा भी नेपथ्य में ही रह गई।

आजाद हिंद फौज के 25 वर्ष पूर्ण होने पर भारत सरकार ने 21 अक्तूबर, 1968 को 20 पैसे का डाक टिकट जारी किया जिसमें सुभाष चंद्र बोस को सिंगापुर में आजादी की घोषणा का संकल्प पत्र जारी करते हुए दिखाया गया था। डाक टिकट जन्म शताब्दी पर जारी किया गया।

इसी तरह 30 दिसंबर, 1993 को एक रुपये का डाक टिकट जारी किया गया, जिसमें नेताजी सुभाष चंद्र बोस को परेड का निरीक्षण करते हुए दिखाया गया।

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा 31 दिसंबर, 2018 को तीन डाक टिकटों की शृंखला जारी की गई। ये डाक टिकट नेताजी द्वारा पोर्ट ब्लेयर में नेताजी द्वारा प्रथम ध्वजारोहण के 75वीं वर्षगाँठ पर जारी किए गए। पुनः 23 जनवरी, 2021 को प्रधानमंत्री द्वारा एक 25 रुपये का डाक टिकट नेताजी के 125वीं वर्षगाँठ पर जारी किया गया। इस अवसर पर एक विशेष सिक्का भी जारी किया गया और प्रधानमंत्री द्वारा प्रत्येक वर्ष 23 जनवरी को 'बलिदान दिवस' के रूप में मनाने की घोषणा की गई।

सुभाष चंद्र बोस आजाद हिंद फौज के सिपाही के रूप में इतिहास में अमर हो गए जो भारतीय जनता के मानसपटल पर एक चमकते सितारे की भाँति हमेशा जगमगाते रहेंगे। नेताजी मातृभूमि के स्नेह और स्वतंत्रता के लिए किए गए अथक प्रयासों के कारण आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणा के स्रोत बनकर सदैव स्मरण किए जाएँगे।

भारतीय डाक-तार विभाग ने विगत 70 वर्षों में नौ डाक टिकट जारी कर इतिहास के स्वर्णिम अध्याय को सहेजकर रखने का प्रयास किया है।

जब आगरा के युवकों ने अपने खून से लिखकर नेताजी को बोला 'जयहिंद'

'ताज नगरी' के नाम से विख्यात उत्तर प्रदेश के आगरा शहर का भी भारत की आजादी के आंदोलन में उल्लेखनीय योगदान रहा है। आगरावासियों ने प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से स्वाधीनता आंदोलन में भाग तो लिया ही, क्रांतिकारियों को अंग्रेज हुकूमत से बचाया, उनको छिपाया, प्रश्रय दिया व आर्थिक सहायता भी प्रदान की। आगरा के युवकों में क्रांति का जोश भरने व अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध शंखनाद करने का आह्वान करने वालों में नेताजी सुभाष चंद्र बोस का भी प्रमुख योगदान रहा। नेताजी ने 1937 व 1940 में दो बार आगरा की यात्रा की। 1937 में पहली बार जब नेताजी आगरा आए थे तब जामा मस्जिद के समीप स्थित एक प्राचीन बाजार का नाम 'सुभाष बाजार' कर दिया गया था। पहले इस बाजार का नाम 'मस्जिद तला' था। आगरा का 'सुभाष पार्क' व आगरा के विशिष्ट क्षेत्र, माल रोड के चौराहे पर लगी नेताजी की भव्य प्रतिमा आगरावासियों के नेताजी के प्रति प्रेम व अगाध श्रद्धा को दर्शाती है।

अप्रैल 1939 में नेताजी ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देकर ऑल इंडिया फॉरवर्ड ब्लॉक पार्टी बनाई थी। नई पार्टी के उद्देश्य और अपनी विचारधारा से सबको अवगत कराने के लिए नेताजी 1940 में दूसरी बार आगरा आए थे। उनके साथ 'आनंदबाजार पत्रिका' के पत्रकार मजूमदार और काकोरी कांड के क्रांतिकारी रामकृष्ण खत्री भी थे। नेताजी की सभा मोतीगंज के चुंगी मैदान में आयोजित की गई। इस सभा में नेताजी ने लोगों में जोश भर दिया था। उन्होंने नागरिकों से आह्वान किया था कि ब्रिटिश नौकरशाही इस समय विश्वयुद्ध में उलझी है, ऐसे में अंग्रेजों पर हमला बोलना काफी फायदेमंद रहेगा। उन्होंने छात्रों से कॉलेज छोड़कर आंदोलन में शामिल होने व सशस्त्र संघर्ष के लिए तैयार रहने को कहा था।

इस सभा में नेताजी ने भारी संख्या में उपस्थित जनसमुदाय से कहा था कि जो लोग आजादी चाहते हैं, वे अपना हाथ उठा दें। इस पर सभा में सभी ने हाथ उठा दिए थे। इससे नेताजी संतुष्ट नहीं हुए, फिर बोले, "जो युवक देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराना चाहते हैं, वे अपने खून से लिखकर दें।" इस आह्वान से युवकों में बहुत जोश भर गया। कई युवाओं ने कागज पर अपने खून से 'जय हिंद' तो कुछ ने 'वंदे मातरम्' लिख दिया। कई ने 'भारत माता की जय' और 'सुभाष चंद्र बोस की जय' भी लिखा था।

नेताजी कई दिन तक खातीपाड़ा, लोहामंडी में रतनलाल जैन के निवास पर रुके थे। आगरा के कई क्रांतिकारी उनसे मिलने जाया करते थे। आगरा के अंग्रेज कलक्टर डी.पी. हार्डिंग पर बम फेंकने वाले क्रांतिकारी रोशनलाल गुप्त 'करुणेश', वासुदेव गुप्ता, कलुआ राम, सेठ अचल सिंह, पं. श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल आदि नेताजी से विचार-विमर्श करते थे।

इस सभा में भाग लेने वाले व नेताजी से भेंट करने वाले अधिकांश लोग स्वर्गवासी हो चुके हैं। उनके परिजन अपने पिता व दादा द्वारा इस संबंध में दी गई जानकारी के आधार पर अपने स्मृतिपटल को झकझोर कर आगरा में नेताजी की हुँकार को अभी भी याद करते हैं।

(वरिष्ठ पत्रकार आदर्श नंदन गुप्ता, वयोवृद्ध स्वाधीनता सेनानी रानी सरोज गौरिहार, नेताजी पर शोध करने वाले वरिष्ठ साहित्यकार हरीमोहन सिंह कोठिया से बातचीत व 'रोशनलाल गुप्त अभिनंदन ग्रंथ' में प्रकाशित लेख के आधार पर)

सर्वज्ञ शेखर

संप्रति : स्वतंत्र लेखक, साहित्यकार।

लेखन : सेवानिवृत्त बैंक अधिकारी, बैंकों में राजभाषा के उन्नयन हेतु प्रयासों के लिए स्थानीय 'नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति' से लेकर 'भारतीय रिजर्व बैंक' स्तर के अनेक सम्मानों व साहित्यिक क्षेत्र में उपलब्धियों के लिए अभिनंदित। एक पुस्तक प्रकाशित व दो प्रकाशनाधीन। विभिन्न समाचार-पत्रों में स्वतंत्र लेखन के माध्यम से समसामयिक व ज्वलंत विषयों, सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध जनजागरण लगातार जारी है।।

संपर्क : मोबाइल– 8192000456

ई-मेल : gupta.ss05@gmail.com

आओ भारतीय भाषाएँ सीखें

हिंदी	संस्कृतम्	पंजाबी	उर्दू	कश्मीरी	सिंधी	मराठी	कोंकणी	गुजराती	नेपाली	बांग्ला
तरकारी	**शाकः**	**सब्ज़ी**	**तरकारी (सब्ज़ी)**	**सबज़ी, तरकॉर्य**	**सब्ज़ी, भाॼी**	**भाजी**	**भाजी**	**शाकभाजी**	**तरकारी, सब्जी**	**तरितरकारि, शब्जी**
अदरक	आर्द्रकम्	अदरक	अदरक	अदरख	अदिरक	आले	आलें	आदु	अदुवा	आदा
अरबी	आलुकी	अरबी	अर्वी	अरबी	कचालू	अळकुडी	अळमें	अळवी	पिंडालु	कचु
आलू	आलुकम्	आलू	आलू	ओलुव	पटाटो	बटाटा	बटाट	बटाटो बटाका	आलु	आलु
कटहल	पनसः	कठल	कटहल	कटहल	कटहलु	फणस	पणस	फणस	कटहर	काँठाल, ऐंचोर काँचा, काँठाल
करेला	कारवेलम्	करेला	करेला	करेल	करेलो	कारले	करातें, कारेटी	कारेलुं	करेलो	करला, उच्छे
काशीफल (कद्दू)	काशीफलम्	कद्दू	कद्दू	अल	काशीफलु, पेठो	लाल भोपळा	कोंकणु दुदी	कोळुं	कुभिण्डो	कुमड़ो, कुमड़ा
टमाटर	ताम्रतरः, रागालुः	टमाटर	टमाटर	रूवांगुन, टमाटर	टमाटो	टोमॅटो	टमाट, तोमात	टमेटुं	गोलभेंडा, रामभेंडा	टमेटो, टम्माटो, बिलाती बेगुन
तोरी (तोरई)	कोशातकी	तोरी	तोरी	त्वरेल	तूरी, तोरी	दोडका	घोंसाळें, दोडगें	तुरियुं	घिरौंलो, तोरियाँ	धुँधुल, मौलो
धनिया	वितुन्नकम्	धनिया	धनिया	दॅनिय	सावा धाणा, कोतमीरु	कोथिंबीर	कोथमीर	लीला धाणा, कोथमीर	धनियाँ	धने, धनेपत्ता
नीबू	निम्बुकम्	निंबू	नींबू, लीमूं	न्योम	लीमो	लिंबू	लिंबू	लींबू, लिंबू	निबुवा, निम्बू, कागती	लेबु, नेबु (कागजि)
परवल	पटोलः	परमल	परवल, परमल	परवल	परवल	तोंडल्या सारखी एक पळ भाजी	परवळ	पडोळें, पडवळें	परबर	पटोल
पालक	पालक्यम्	पालक	पालक	पालख	पालक	पालक	पालक	पालक	पालुङ्गो	पालङ (शाक)

असमिया	मणिपुरी	ओड़िआ	तेलुगू	तमिल	मलयालम	कन्नड़	डोगरी	संताली	मैथिली	बोड़ो
पाचलि	**एन्जाङ्**	**तरकारी**	**कूरगायलु**	**काय्करि**	**पच्चकरि, मलक्करि**	**कायिपल्य**	**सब्जी**	**उतु**	**तरकारी**	**आँखि, मैगं**
आदा	सीङ्	अदा	अल्लमु	इंजि	इंचि	हसिशुंठि	अदरक	आदा	आद	हाइजें
कचु	पाल्	सारु	चेम	चेप्पंकिऴंगु	चेंपुं	केसुवु	अरबी	सारू	पेंची, अरुबी	थास
आलु	आलू	आलु	बंगाळदुंप	उरुळैक्किळंगु	उरुळन् किऴङ्ङु	आलूगेड्डे	आलू	आलु	आलू	आलू, था
कठाल	थैबोङ्	पणस	पनस	पला	चक्क	हलसु	कटैह्ल	कान्ठाड़	कटहर	खान्थाल
केरेला	कारोल-अखाबी	कलरा	काकर	पागर् काय्	पावक्क, कैप्पक्क	हागलकायि	करेला	काल्ला, कारला	करैल	उदासि, खेरेला गोखा
रङा लाओ	माइरेल	कखारु	गुम्मडि	पूसणिक्काय्	मत्तङ्ङ	कुंबळकायि	कद्दूं	कँह्डा	कदीमा	जोगोनार, खाख्लौ
बिलाही	खामेन असिनबा	टमाटो/विलाति बाइगण	टमोटा	तक्काळि	टोमाट्टो, तक्काळि	टोमाटो, चप्परहण्णु	चैङन, टमाटर	बेलाति, टमाटर	टमाटर	फान्थाउ बिलाथि
भोल, जिका झिंगा	सेबोत	जाह्नि, तरडा	बीर काय	पीर्क्कै	पीच्चिङ्ङ	हीरेकायि	तोरी	परलता झिगा	घेरा, घिउरा	फोरला, जिंखा
धनिया, मेमेधु	फदीगोम	धनिआपत्र	कोतिमिरि	कोत्तमल्लि	कोत्तमल्लि	कोत्तंबरि सोप्पु	ब्यूह्न, धनियां	धुनिया	धन्नी	दुन्दिया
नेमु टेङा	चमप्रा	लेंबु	निम्मकाय	ऍलुमिच्चम्, पऴम्	चेरुनारङ्ङ	निंबे-हण्णु	निंबू	काग़ाजि लिंबु	नेबो	नारें लेबु
पटल	परवल	पोटल	परवल	परवल्	कोवक्क	तोण्डेकायि	परमल	पटल	पड़ोर	फथल
पालें	पालक	पालंग (शाग)	पालकूर	पालककीरै	पालक चीर	पालक	पालक	पालक आड़ाः	पलाँकी	फालें

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

नेताजी सुभाष चंद्र बोस के पूर्वोत्तर भारत के दो सहयोद्धा

नेताजी सुभाष चंद्र बोस द्वारा संगठित आजाद हिंद फौज में भारत के भिन्न प्रांत से युवाओं ने आकर सहयोग किया था। ऐसे ही दो युवक उमेशचंद्र देवचौधुरी और श्रीदाम महन्त असम प्रांत के थे। नेताजी के इन सहयोद्धाओं के बारे में जानने से पहले असम प्रांत के स्वतंत्रता संग्राम का क्या प्रवाह था, देख लेते हैं।

पूर्वोत्तर भारत यानी असम प्रांत सन् 1826 से पहले ब्रिटिश भारत का अंग नहीं था। 1826 में पहले एंग्लो-बर्मी युद्ध के बाद ब्रिटिश सेना द्वारा असम प्रांत पर कब्जा कर लिया गया था। 24 फरवरी, 1826 को पूर्वोत्तर के इस प्रांत को बर्मा ने ब्रिटेन को दे दिया। बर्मी आक्रमण से पहले असम प्रांत का प्रायः स्थान अहोम रियासत का था। बर्मी सेना के उपद्रव से बचने के लिए ब्रिटिश सेना को आमंत्रण करना पड़ा, पर सहायता के नाम पर कब्जा कर लिया गया।

कविता शइकीया राजखोआ

जन्म : 02 अक्तूबर, 1977

शिक्षा : बी.एड., एम.एससी.

संप्रति : विज्ञान शिक्षिका।

प्रकाशन : अदम्य संग्रामी कनकलता बरुआ, एकाजित एकुकि कविता (काव्य संकलन)। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित।

संपर्क : मोबाइल– 9101773655

ई-मेल : kabitasaikia1977@gmail.com

सन् 1826 और 1832 के बीच असम को बंगाल प्रेसीडेंसी के तहत बंगाल का हिस्सा बनाया गया था। 1832 से अक्तूबर 1838 तक अहोम रियासत को ऊपरी असम में बहाल कर दिया गया, जबकि अंग्रेजों ने लोअर असम में शासन किया। 1828 में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध पहली बार एक अहोम राजकुमार गोमधर कोअर ने आवाज उठाई। बाद में उन्हें मृत्युदंड दे दिया गया। सिपाही विद्रोह के दौरान 1858 में विद्रोहियों से ताल्लुक रखने के जुर्म में मनिराम देवान और पियली बरुआ को 26 फरवरी, 1858 को खुलेआम फाँसी दी गई। इन दोनों को असम के स्वाधीनता संग्राम का प्रथम शहीद माना जाता है।

पथरुघाट, फुलगुरिधेवा आदि स्थान कृषक विद्रोह के लिए प्रसिद्ध हुए। इन स्थानों पर कृषकों ने ब्रिटिश शासन और इसके बढ़ते लगान के लिए प्रतिवाद किया था। बड़ी निर्दयता के साथ अंग्रेजों ने इन कृषक भाई-बहनों पर गोलियाँ बरसाईं। अनेक लोग शहीद हुए।

16 अक्तूबर, 1905 से असम पूर्वी बंगाल प्रांत का हिस्सा बन गया। 1911 में निरंतर बड़े पैमाने पर हुए विरोध अभियान के बाद प्रांत

उमेशचंद्र देवचौधुरी

को रद्द कर दिया गया था और 13 अप्रैल, 1912 को बंगाल के दो हिस्सों को फिर से भाषा के आधार पर एकत्रित किया। असमिया भाषा के क्षेत्रों को असम, बिहार और उड़ीसा बनाया गया।

जब भी ब्रिटिश शासन के खिलाफ प्रतिवादी आवाज उठाती थी या ऐसे कार्यक्रम संपन्न होने की सूचना सरकार को मिलती थी तो बड़ी बेरहमी से उसे कुचल

दिया जाता था। इसी कारण से असम प्रांत में 1920 तक स्वतंत्रता संग्राम धीमी गति से चल रहा था। उस समय कलकत्ता में स्वतंत्रता संग्राम की हवा काफी जोरों से चल रही थी। कलकत्ता में पढ़ रहे असम के छात्रों के मन में भी इसका प्रभाव काफी गंभीर रूप से पड़ा था। असम के लोगों ने इस संग्रामी चेतना का विस्तार करने हेतु साहित्य चर्चा को एक सुंदर जरिया बना लिया। छात्र नेता लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ, चंद्रकुमार अग्रवाल, हेमचंद्र गोस्वामी, आनंदचंद्र अग्रवाल, पद्मनाथ गोहाई बरुआ, जतीन्द्र नाथ दुआरा आदि ने असमिया साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की और अपने लेखों के जरिए लोगों के मन में जागरूकता लाने की कोशिश की।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में 1920 से असहयोग आंदोलन आरंभ हुआ। 1921 के अगस्त महीने में पहली बार महात्मा गांधी असम प्रांत में पधारे। गुवाहाटी, तेजपुर, जोरहाट, डिब्रूगढ़, सिलेत होकर कलकत्ता चले गए। गांधी के आगमन से असम के लोगों के बीच संग्रामी चेतना की एक नई लहर उठी। इससे अंग्रेजों को काफी चिंता हुई।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में गृहीत संविधान में असम प्रांत के लिए एक अलग प्रदेश कमेटी गठन करने का अनुमोदन मिला था और गठित हुआ भी। 01 जुलाई, 1921 को असम प्रदेश कांग्रेस कमेटी का प्रथम अधिवेशन अनुष्ठित किया गया। 1926 में असम प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने पांडु में अखिल भारत कांग्रेस अधिवेशन का आयोजन किया।

उन दिनों कलकत्ता में चितरंजन दास बाबू के साथ मिलकर सुभाष चंद्र बोस स्वतंत्रता संग्राम के काम-काज कर रहे थे। वे भारत माता की सेवा करने हेतु, मुक्ति दिलाने हेतु आईसीएस की नौकरी से इस्तीफा देकर आंदोलन में शामिल हुए। बहुत कम दिनों में ही सुभाषचंद्र बोस कांग्रेस के जनप्रिय नेता बन गए।

बोस 1927 में कांग्रेस के राष्ट्रीय महासचिव बने। 1938 में उन्हें कांग्रेस का राष्ट्रीय अध्यक्ष चुना गया। अध्यक्ष बनकर उन्होंने अपने भाषण में कहा था कि “मेरी यह कामना है कि महात्मा गांधी के नेतृत्व में ही हमें स्वाधीनता की लड़ाई लड़नी है। हमारी लड़ाई केवल ब्रिटिश साम्राज्यवाद से नहीं, विश्व साम्राज्यवाद से है।”

वे बड़े निष्ठा से काम कर रहे थे, पर धीरे-धीरे कांग्रेस से सुभाष चंद्र का मोह भंग होने लगा। 16 मार्च, 1939 को उन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया। उनके अनुयायियों को बहुत दुख पहुँचा। सुभाष चंद्र ने आजादी के आंदोलन को एक नई राह देते हुए युवाओं को संगठित करने का प्रयास पूरी निष्ठा से शुरू कर दिया। इसकी शुरुआत 04 जुलाई, 1943 को सिंगापुर में भारतीय स्वाधीनता सम्मेलन के साथ हुई। 05 जुलाई, 1943 को आजाद हिंद फौज का विधिवत गठन हुआ।

उमेशचंद्र देवचौधुरी असम के बरपेटा जिले के बजाली महकुमा के निवासी थे और श्रीदाम महन्त गुवाहाटी के खारघूलि के निवासी थे। युवा उमेशचंद्र नौकरी की तलाश में घर से भागकर कलकत्ता आए। कलकत्ता में उन्होंने सुभाष चंद्र बोस के बारे में काफी रोचक कथाएँ सुनीं। उन्हें पता चला कि सुभाष चंद्र बोस देश की आजादी के लिए राजा महेन्द्र प्रताप की तरह सैनिक जुटा रहे हैं। आजादी के लिए निश्चित रूप से युद्ध करेंगे। जनवरी में सुभाष चंद्र बोस जर्मनी गए। अब भारतीय युवाओं को ब्रिटिश फौज में अंतर्भुक्त होना चाहिए। जर्मन-जापान फौज के आक्रमण से ब्रिटिश फौज की पराजय निश्चित है और तब पराजित भारतीय सैनिक बोस के सैनिक बन जाएँगे। इस तरह से परिकल्पना करके संग्रामी चेतना से पुष्ट युवा ब्रिटिश फौज में भरती हुए थे। उमेशचंद्र और श्रीदाम महन्त भी इसी योजना के साथ ब्रिटिश फौज में भरती हुए। पाँच महीने के प्रशिक्षण के बाद नए सैनिकों को सिंगापुर युद्ध क्षेत्र में भेज दिया गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ। दिसंबर 1941 में ब्रिटिश फौज जापान के हाथों मालय में पराजित हुई। जापान ने इसके बाद सिंगापुर दखल किया। तभी से दक्षिण-पूर्वी एशिया में ब्रिटिश राज का अंत हुआ। ब्रिटिश फौज के सैनिक जापान के हाथों युद्धबंदी बन गए। बाद में आजाद हिंद फौज से युद्ध किया।

07 मार्च, 1942 में जापान ने बर्मा पर आक्रमण करके रंगून पर अपना अधिकार जमाया। तब बिप्लवी वीर रासबिहारी बोस जापान में ही थे। नेताजी जापान-जर्मन के साथ मिलकर युद्ध परिकल्पना कर रहे थे और रासबिहारी अपने भाषणों के जरिए लोगों में आजाद हिंद फौज के प्रति जनप्रियता बढ़ाने के काम में लगे थे। उमेशचंद्र के श्रीदामजी जैसे लोगों को इन भाषणों ने काफी प्रभावित किया। 25 अगस्त, 1943 को उमेशचंद्रजी को नेताजी सुभाषचंद्र के कार्यालय में सेकेंड लेफ्टिनेंट के पद पर नियुक्त किया गया। फरवरी 1944 में आजाद हिंद फौज ने भारत-बर्मा सीमा की तामु नदी पारकर भारत में प्रवेश किया। आजाद हिंद फौज 'दिल्ली चलो' का नारा लगाते हुए आगे बढ़ी। भारत पहुँचने के बाद सेनाध्यक्ष सुभाष चंद्र ने इंफाल, कोहिमा, बर्मा आदि स्थान के लिए लेफ्टिनेंट पद पर उमेशचंद्र को पदोन्नत करके युद्ध जारी रखा। नेताजी खुद भी उन फौजियों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर आगे बढ़े। उस समय मेजर जनरल मः जामान कियानि, कर्नल प्रेम चेहगाल, कर्नल चौकत मालिक आदि के साथ उमेशचंद्र ने युद्ध क्षेत्र में प्रबल संग्राम खड़ा किया। इसके बाद मेजर जनरल सुरेन्द्र नाथ मिश्र के साथ अराकॉन पर्वत पारकर के चितांग शहर में दखल करने का दायित्व मिला। वहाँ पर मित्र पक्ष के आक्रमण का शिकार हुआ। नेताजी को वहाँ से सुरक्षित स्थान पर भेजा गया। उमेशचंद्र घायल हो गए। 04 मई, 1945 को आजाद हिंद फौज ब्रिटिश फौज के हाथों पराजित हुई और आत्मसमर्पण कर दिया। सिपाहियों को बंदी बनाया गया।

"12 सितंबर, 1944 को रंगून के जुबली हॉल में शहीद यतीन्द्र दास के स्मृति दिवस पर नेताजी ने अत्यंत मार्मिक भाषण देते हुए कहा–"अब हमारी आजादी निश्चित है, परंतु आजादी बलिदान माँगती है। आप मुझे खून दो, मैं आपको आजादी दूँगा।" यही देश के नौजवानों में प्राण फूँकने वाला वाक्य था, जो भारत ही नहीं, विश्व के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।"

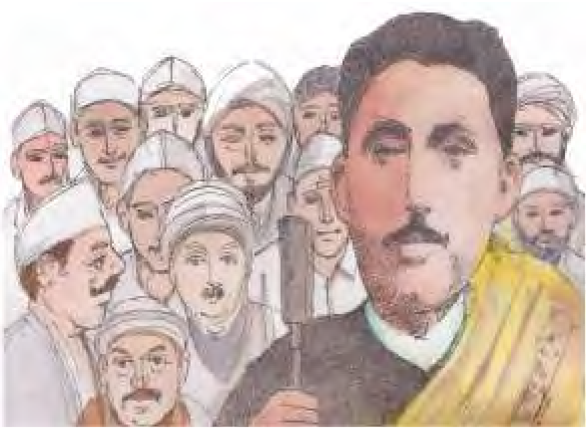

16 अगस्त, 1945 को टोक्यो के लिए निकलने पर ताइहोकु हवाई अड्डे पर नेताजी का विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया और स्वतंत्र भारत की अमरता का जयघोष करने वाला, भारत माँ का दुलारा सदा के लिए, राष्ट्रप्रेम की दिव्य ज्योति जलाकर अमर हो गया।

उधर सभी युद्ध बंदियों को जनवरी 1946 में पूर्वी बंगाल के चितांग जिले के एक जहाजघाट में रखा गया। बंदियों को तीन भागों में अंतर्भुक्त किया—

व्हाइट कैटेगरी : जो लोग पेट के लिए मजबूर होकर फौज में भरती हुए, उन्हें मुक्त कर दिया गया।

ग्रे कैटेगरी : जो लोग खाने-पीने की सुविधा के लिए फौज में भरती हुए और भारत के स्वाधीन होने के बाद उसी सुविधा की उम्मीद रखते हैं, सरकारी सहायता के बिना उन्हें मुक्त कर दिया गया।

ब्लैक कैटेगरी : जो लोग भारत माता की आजादी के लिए फौज में भरती हुए थे, उन लोगों को इस भाग में रखा गया और विभिन्न जेलों में भेजे गए।

उमेशचंद्र और श्रीदाम को ब्लैक कैटेगरी में रखा गया। उन्हें मुल्तान जेल भेज दिया गया। जब भारत स्वतंत्र हुआ तो सबको सम्मानपूर्वक मुक्त कर दिया गया।

12 सितंबर, 1944 को रंगून के जुबली हॉल में शहीद यतीन्द्र दास के स्मृति दिवस पर नेताजी ने अत्यंत मार्मिक भाषण देते हुए कहा—"अब हमारी आजादी निश्चित है, परंतु आजादी बलिदान माँगती है। आप मुझे खून दो, मैं आपको आजादी दूँगा।" यही देश के नौजवानों में प्राण फूँकने वाला वाक्य था, जो भारत ही नहीं, विश्व के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है।

नेताजी और अनेक गुमनाम फौजी, संग्राम सेनानियों के बलिदान से भारत को स्वतंत्रता मिली। वर्णनातीत मानसिक, शारीरिक कष्ट उठाने के बाद उमेशचंद्र देवचौधुरी और श्रीदाम महन्त इन दो भाग्यशाली युद्धों के अंत में भारत की आजादी का स्वाद चख पाए।

आज उन वीर-वीरांगनाओं के बलिदान से ही भारत को विश्व में सबसे बड़े गणतंत्र होने का श्रेय मिला है।

दस रुपये में आम पाठकों तक पुस्तकें पहुँचाने का जुनून

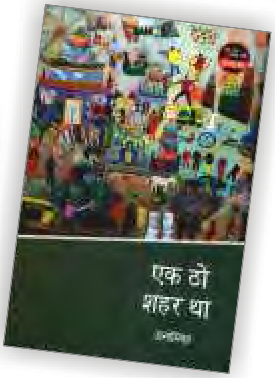

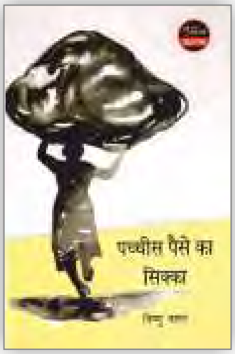

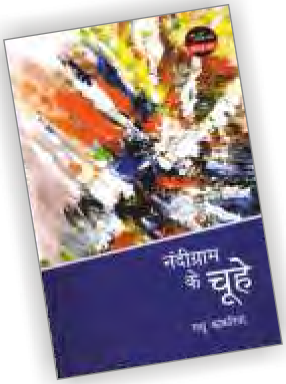

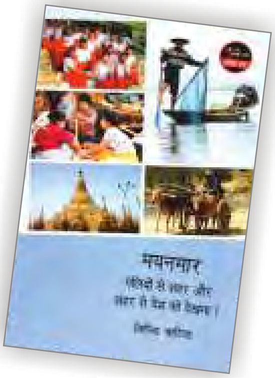

पुस्तकों को 'इनसान का सबसे अच्छा मित्र' कहा जाता है। सवाल यह है कि इस दौर में क्या हम पुस्तकों को अपना मित्र मानते हैं? आज हिंदी प्रकाशन जगत अनेक विसंगतियों से जूझ रहा है। एक ओर हम पुस्तक पढ़ना नहीं चाहते तो दूसरी ओर सच्चे पाठकों को सही समय और उचित मूल्य पर पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पातीं। प्रकाशकों का रोना है कि पुस्तकें बिकती नहीं। एक तरफ लेखक पैसे देकर पुस्तकें छपवाने लगे हैं तो दूसरी तरफ प्रकाशक सरकारी खरीद में ज्यादा रुचि लेते हैं। इस माहौल में बहुत कम प्रकाशक ऐसे हैं जो सच्चे अर्थों में पाठकों तक पुस्तकें ले जाना चाहते हैं। बोधि प्रकाशन, जयपुर इस दिशा में सराहनीय प्रयास कर रहा है। हाल ही में इस प्रकाशन ने 'बोधि पुस्तक पर्व' के अंतर्गत दस पुस्तकों का पाँचवाँ सैट 100 रुपये में प्रकाशित किया है। यानी ले आउट, डिजाइनिंग और मुद्रण की बेहतर गुणवत्ता के साथ प्रत्येक पुस्तक का मूल्य सिर्फ दस रुपये है। इससे पहले यह प्रकाशन 2010, 2011, 2013 और 2016 में इसी तरह के क्रमशः चार सैट प्रकाशित कर चुका है और इनकी माँग अभी भी बनी हुई है।

इस सैट की पहली पुस्तक है—'पच्चीस पैसे का सिक्का'। यह सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार विष्णु नागर के 'शुक्रवार' में प्रकाशित संपादकीय लेखों का संग्रह है। विष्णु नागर व्यंग्य और कविता में अपने अलग तेवर के लिए चर्चित हैं। इन संपादकीय लेखों में भी उनका यह तेवर दिखाई देता है। इन लेखों में उन्होंने जीवन की विभिन्न विसंगतियों का गंभीर विश्लेषण किया है। सैट की दूसरी पुस्तक 'एक ठो शहर था' की लेखिका प्रख्यात कवयित्री अनामिका हैं। अनामिका ने इस पुस्तक में अपने शहर मुजफ्फरपुर का शहरनामा प्रस्तुत किया है। इन संस्मरणों में एक अलग ही रागात्मकता दिखाई देती है। इन संस्करणों में लोक का वह रंग दिखाई देता है जो इन दिनों गायब होता जा रहा है। सैट की तीसरी पुस्तक 'मयनमार : गलियों से शहर और शहर से देश को देखना' के लेखक हैं जितेन्द्र भाटिया। यात्रा, संस्मरण और विचार पर केंद्रित यह पुस्तक मयनमार के बहाने हमारे समाज और देश की

रोहित कौशिक

प्रकाशित कृतियाँ : 21वीं सदी : धर्म, शिक्षा, समाज और गांधी (लेख संग्रह), इस खण्डित समय में (कविता संग्रह)। हिंदी के लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में नियमित आलेख लेखन।

संपर्क : मोबाइल– 9917901212

ई-मेल : rohitkaushikmzm@gmail.com

वर्तमान स्थिति का भी मूल्यांकन करती है। लेखक ने भारत और मयनमार के अनेक मुद्‌दों को एक ही जमीन पर रखते हुए तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए, 1987 में मयनमार में हुई भयानक नोटबंदी और अपने देश में 2016 में हुई नोटबंदी ने आम आदमी को सड़क पर लाकर खड़ा कर दिया। इस सैट की चौथी पुस्तक 'लहरों में जहर' के लेखक सुप्रसिद्ध पत्रकार और पर्यावरणविद पंकज चतुर्वेदी हैं। इस पुस्तक में पंकज चतुर्वेदी ने देश की अनेक नदियों में हो रहे प्रदूषण पर व्यापक चर्चा की है। लेखक का मानना है कि जो समाज अपनी आस्था के कारण नदियों को पूजता है, वही समाज नदियों को प्रदूषित भी करता है। सैट की पाँचवीं पुस्तक 'कविता के आयाम' के लेखक हैं वरिष्ठ आलोचक राजाराम भादू। इस पुस्तक में कविता के प्रयोजन, कविता की भाषा, शिल्प और कथ्य, कविता की पृष्ठभूमि, कविता के संदर्भ, कविता के आयाम, कविता की समकालीनता, रचना का भविष्य तथा कविता और पेटिंग के अंतर्संबंधों पर गंभीर विमर्श किया गया है। फिल्मकार और कथाकार सुरेन्द्र मनन की पुस्तक 'शिलाओं पर लिखे शब्द' इस सैट की छठी पुस्तक है। संस्मरणों पर केंद्रित इस पुस्तक को पढ़कर विभिन्न देशों के इतिहास और भूगोल तथा जनजीवन की व्यापक जानकारी मिलती है। सुरेन्द्र मनन के इन संस्मरणों को पढ़कर यह महसूस होता है कि जैसे हम कोई कलात्मक रचना पढ़ रहे हों। संस्कृतिकर्मी और कला आलोचक डॉ. राजेश कुमार व्यास की पुस्तक 'रस निरंजन' इस सैट की सातवीं पुस्तक है। कलाओं पर एकाग्र इस पुस्तक में राजेश कुमार व्यास ने संगीत, नृत्य, नाटक आदि कलाओं पर गंभीरता से लिखा है। उनका मानना है कि सुरों के माधुर्य में अमरत्व का भाव कहीं मिलता है तो वह भारतीय संगीत में ही है। इस सैट की आठवीं पुस्तक है 'नंदीग्राम के चूहे'। मधु कांकरिया के इस कहानी संग्रह में छह कहानियाँ संकलित हैं। इन कहानियों में हमारे समय का यथार्थ बहुत ही मुखरता के साथ प्रकट हुआ है। लक्ष्मी शर्मा का कहानी संग्रह 'रानियाँ रोती नहीं' इस सैट की नौवीं पुस्तक है। इस सैट की दसवीं पुस्तक है 'दातुन'। मृदुला शुक्ला के इस कहानी संग्रह में छह कहानियाँ संकलित हैं।

बोधि प्रकाशन के प्रबंध निदेशक मायामृग से जब मैंने पूछा कि उनके दिमाग में दस रुपये में पुस्तक प्रकाशित करने का ख़याल कैसे आया? तो उन्होंने बताया कि एक दिन वरिष्ठ कवि गोविन्द माथुर मेरे पास बैठे हुए अखबार पढ़ रहे थे। उस अखबार में एक पुस्तक की समीक्षा छपी हुई थी। लगभग 50 पेज की उस पुस्तक की कीमत 150 रुपये थी। गोविन्द माथुर दुखी होकर मुझसे कहने लगे कि 50 पेज की पुस्तक को 150 रुपये में कौन खरीदेगा? मैंने उनसे सहमति जताते हुए कहा कि सही बात है गोविन्दजी, पुस्तक की कीमत तो 10-20 रुपये होनी चाहिए ताकि कोई भी खरीद सके। गोविन्दजी बोले कि 10-20 रुपये में तो कोई पुस्तक नहीं आती है। हाँ, यह जरूर है कि पुस्तक की कीमत 50 रुपये के आस-पास होनी चाहिए। मैंने कहा कि पुस्तक की कीमत तो 10-20 रुपये ही होनी चाहिए। यह बात तो यहीं खत्म हो गई। कुछ दिनों बाद मैंने गंभीरता से इस पर सोचना शुरू किया कि क्या सचमुच ऐसा हो सकता है। इसके पीछे सोच यह रही कि पाठकों का ध्यान कैसे खींचा जाए ताकि एक तरफ उनके अंदर पढ़ने के संस्कार पैदा हों और दूसरी तरफ उन्हें पुस्तक खरीदने की आदत हो जाए। फिर सोचा गया कि शायद 20-25 रुपये में पाठकों का ध्यानाकर्षण न हो, लेकिन 10 रुपये में पाठकों का ध्यानाकर्षण जरूर होगा। इस संबंध में मूल योजना तो कुछ और बनी थी। हमारी अपनी प्रिंटिंग प्रेस है। पहले योजना यह बनी कि हमारे पास पहले से जो पुस्तकों की प्लेट्स पड़ी हुई हैं, उनमें से ही कुछ पुस्तकें छाप लेते हैं। जब हमने हिसाब लगाया तो बिना किसी मुनाफे और हानि के पुस्तक छापने का खर्च निकल रहा था। अपनी प्रिंटिंग प्रेस होने के कारण मैंने इसमें प्रिंटिंग का खर्च नहीं जोड़ा। जब मैंने इस योजना की चर्चा अपने कुछ साहित्यिक मित्रों से की तो वे बहुत खुश और उत्साहित हुए, लेकिन उन्होंने कहा कि यह इतना जबरदस्त और अच्छा विचार है तो फिर आप रिप्रिंट छापने की योजना क्यों बना रहे हो, आप नई पुस्तकें छापो। फिर मैंने इस योजना पर काम करना शुरू किया। उस समय भारद्वाजजी ने मेरी बहुत मदद की। उन्होंने कई अच्छे लेखकों से मिलवाया। जब यह पूरी योजना बन गई तो मैंने सोचा कि इस योजना में वरिष्ठ और नए सब तरह के अच्छे लेखक हमारे साथ हैं तो पुस्तक में पेपर भी अच्छा लगाया जाए। जब मैंने मायामृगजी से पूछा कि पहले सैट के प्रकाशन के समय क्या आपका खर्चा निकल गया था? तो उन्होंने बताया कि उस समय तो खर्चा निकल गया था, लेकिन पिछले दस सालों में कई तरह के कर लग गए हैं। पेपर के दाम भी बढ़ गए हैं। इसलिए इस समय लागत बढ़ गई है। अब जेब से लगने वाली स्थिति आ गई है, लेकिन अब हम यह सोचते हैं कि जब हम प्रकाशन से कमा रहे हैं तो हमारी यह नैतिक जिम्मेदारी बनती है कि हम पाठकों के हितों के लिए भी कुछ अच्छा करें। जब मैंने मायामृगजी से पूछा कि आपकी इस पहल पर दूसरे प्रकाशकों का क्या रवैया रहा? तो वे बोले कि कुछ प्रकाशकों ने प्रशंसा की, तो कुछ ने आलोचना भी की, लेकिन किसी ने आलोचना सामने नहीं की। दबे-छिपे जरूर कहा कि यह तो मार्केट खराब कर रहा है, लेकिन मेरा उद्‌देश्य दूसरे प्रकाशकों को कमतर साबित करना या यह दिखाना नहीं था कि देखो मैं ऐसा कर रहा हूँ और आप नहीं कर पा रहे हो। यह योजना हमारी उम्मीद से कहीं ज्यादा सफल रही। यही कारण है कि हम आज भी इस तरह की पुस्तकें छाप रहे हैं। अब देखना यह है कि हम कब तक इस काम को कर पाते हैं। मैं चाहता हूँ कि लोगों को पुस्तकों की आदत लग जाए। जब लोगों को पुस्तकें पढ़ने की आदत पड़ जाएगी तो वे पुस्तकों की कीमत नहीं देखेंगे। हम कीमत के बहाने लोगों को कंटेंट तक ला रहे हैं। बहरहाल बोधि प्रकाशन के प्रबंध निदेशक मायामृग के आम पाठकों तक सस्ते मूल्य पर किताबें पहुँचाने के प्रयास की जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम है।

सोन-घाटी में जीवंत हैं नेताजी की स्मृतियाँ

भारत के स्वाधीनता संग्राम के सबसे उत्कट और सबसे अग्रणी सेनानी आजाद हिंद फौज के सुप्रीम कमांडर नेताजी सुभाष चंद्र बोस की जयंती के 125वें वर्ष पर उनसे जुड़ी आठ दशक पुरानी अनेक गुमनाम, अल्पज्ञात स्मृतियाँ बिहार के सोन नद के पूर्वी किनारे पर स्थित औरंगाबाद जिला और पश्चिमी किनारे पर स्थित रोहतास जिला के इतिहास-पटल पर भी उभर आई हैं। वह 82 साल पहले 09-10 फरवरी, 1939 को औरंगाबाद (तब गया जिला) के चौरम गाँव (दाउदनगर-बारून रोड) में सुभाष आदर्श उद्योग मंदिर परिसर में पहुँचे थे, जहाँ कांग्रेस का चतुर्थ गया जिला राजनीतिक सम्मेलन हुआ था। कार्यक्रम में पहुँचने के लिए कांग्रेस के राष्ट्रीय अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस कोलकाता से पावरगंज (अब अनुग्रहनारायण रोड) रेलवे स्टेशन आए और वहाँ से कोई 22 कि.मी. का सफर हाथी पर पूरा कर चौरम पहुँचे थे। इस आयोजन से जुड़ी कई स्मृतियाँ कोलकाता संग्रहालय में सुरक्षित हैं, जिनमें चौरम से जवाहरलाल नेहरू को लिखा गया पत्र भी है। चौरम सम्मेलन के आयोजकों में एक करमा खुर्द गाँव के कुमार बद्रीनारायण सिंह द्वारा विद्यालय के लिए दी गई जमीन आज भी धरोहर है, जिसके परिसर में नेताजी सुभाष चंद्र बोस की प्रतिमा स्थापित करने की तैयारी है। नेताजी ने चौरम सम्मेलन के बाद औरंगाबाद के एस.एन. सिन्हा कॉलेज के निकटवर्ती गाँव और जम्होर डाकबंगला (अनुग्रहनारायण रोड) में भी बैठक कर नौजवानों के दिलोदिमाग में आजादी का बिगुल फूँका था। चौरम में नेताजी के आगमन-संबोधन का तत्काल असर यह हुआ था कि करमा खुर्द (दाउदनगर) के जमींदार कुमार बद्रीनारायण सिंह, करपी (अरवल) के जमींदार दुर्गा प्रसाद सहित कई जमींदारों ने सैकड़ों एकड़ जमीन दान (लगानमुक्त) कर दी।

शहीद स्मारक, पटना

कृष्ण किसलय

अंग्रेजी राज के प्रथम विद्रोही बिहार के राजा नारायण सिंह की खोजपूर्ण इतिहास-कथा को सामने लाने का श्रेय और सोनघाटी पुरातत्व परिषद, बिहार के सचिव के रूप में भारत के सोन नद अंचल के राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संदर्भ-संबंध वाले स्थानीय इतिहास का अन्वेषण-लेखन। 1978 से राष्ट्रीय-प्रादेशिक स्तर की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों रचनाओं के प्रकाशन के साथ आकाशवाणी-दूरदर्शन के पटना केंद्र से भी कहानियों-वार्ताओं-परिचर्चाओं का प्रसारण। नाटक, साइंस फिक्शन की पुस्तकें प्रकाशित। कई पुस्तकों में शोध आलेख, लघुकथा संकलित। विज्ञान के इतिहास की चर्चित पुस्तक 'सुनो मैं समय हूँ' राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से प्रकाशित।

संप्रति : डालमियानगर (बिहार) से आंचलिक समाचार-विचार साप्ताहिक सोनमाटी और वेबपोर्टल सोनमाटीडॉटकॉम का संपादन-प्रकाशन।

संपर्क : 9708778136, 9523154607

स्वामी सहजानंद सरस्वती थे नेताजी के बड़े आदर्श

चौरम में राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता देश में किसान आंदोलन के प्रणेता स्वामी सहजानंद सरस्वती ने की थी और कुमार

नरेंद्र देव जैसी हस्ती ने किसानों-मजदूरों, स्वतंत्रता के दीवानों को संबोधित किया था। 1934 के भूकंप के बाद मालगुजारी में राहत देने के मुद्दे पर रुख अनुकूल नहीं होने के कारण स्वामी सहजानंद सरस्वती कांग्रेस से अलग हो गए थे। तब 1936-39 के बीच किसान महासभा के सम्मेलनों में कांग्रेस सम्मेलन से कहीं अधिक भीड़ जुटती थी। स्वामी सहजानंद सरस्वती के प्रति सुभाष चंद्र बोस का अनुराग ऐसा था कि हरिपुरा कांग्रेस सम्मेलन में सरदार वल्लभ भाई पटेल द्वारा टेरेबल (आतंकी) स्वामी कहे जाने पर कांग्रेस अध्यक्ष रहे सुभाष चंद्र बोस ने कड़ी आपत्ति की थी। दरअसल भारतीय स्वाधीनता संग्राम के उस दौर में भारत में जन-जागरण और जनमत-निर्माण के दो प्रमुख केंद्र थे—महात्मा गांधी के नेतृत्व वाला साबरमती आश्रम और स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व वाला बिहटा (पटना) का सीताराम आश्रम। मतभेद होने पर कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने के बाद सुभाष चंद्र बोस ने 22 जून, 1939 को ऑल इंडिया फॉरवर्ड ब्लॉक की स्थापना की और स्वामी सहजानंद सरस्वती के साथ कई सभाएँ कर अपने इस क्रांतिकारी राजनीतिक मंच से स्वतंत्रता संग्राम की अलख जगाई। 02 जुलाई, 1940 को देशद्रोह के आरोप में अपनी गिरफ्तारी से पहले सुभाष चंद्र बोस ने सहजानंद सरस्वती के साथ मेजर रिजवी की अध्यक्षता में 1940 में एक बड़ी आमसभा बिहार के रोहतास जिला में सोन नदी के तट पर स्थित डेहरी-आन-सोन के पड़ाव मैदान में की थी, जिसमें उन्होंने "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दो" का आह्वान किया था। उस आमसभा का अल्प उल्लेख 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और रोहतास जिला' नामक पुस्तक (लेखक : गोरखनाथ विमल, प्रकाशक : बृजबिहारी दुबे) में किया गया है। इसके बाद स्वामी सहजानंद सरस्वती गिरफ्तार किए गए तो फारवर्ड ब्लॉक ने 28 अप्रैल को 'ऑल इंडिया सहजानंद डे' घोषित किया था। फॉरवर्ड ब्लॉक पत्रिका (अप्रैल 1940) में सुभाष चंद्र बोस ने लिखा—'देश में यदि कोई क्रांति करने की, आंदोलन करने की क्षमता रखता है तो वह है सहजानंद सरस्वती। रामगढ़ में समझौता विरोधी सम्मेलन की स्वागत समिति के अध्यक्ष सहजानंद सरस्वती के रूप में ऑल इंडिया फॉरवर्ड ब्लॉक का मित्र, मार्गदर्शक मिला है। बड़ी संख्या में उनके किसान महासभा के लोग फॉरवर्ड ब्लॉक से जुड़े। भारत छोड़ने के बाद बर्लिन रेडियो से प्रसारित उनका एक ब्रॉडकास्ट भी सहजानंद सरस्वती को संबोधित था, जिसमें उन्होंने कहा था कि स्वामी सहजानंद सरस्वती हमारी भूमि में एक नाम है, जो लाखों का नायक है।

नेताजी के संबोधन ने जगपति को बनाया आजादी का दीवाना

नेताजी के चौरम सम्मेलन संबोधन से पड़ोस के गाँव खरांटी (ओबरा प्रखंड, दाउदनगर अनुमंडल) के निवासी जगपति कुमार (पुत्र सुखराज बहादुर सिन्हा) के मन-मस्तिष्क में स्वाधीनता का बीजारोपण ऐसा हुआ कि जगपति कुमार ने तीन वर्ष बाद 11 अगस्त, 1942 को सीने पर अंग्रेजों की गोली खाकर अपने छात्र साथियों के साथ तिरंगा फहराने के लिए शहादत दे दी। 1942 में जगपति कुमार बी.एन. कॉलेज, पटना में प्रथम वर्ष के छात्र थे और कदमकुआँ में रहते थे। उस घटना की स्मृति में पटना सचिवालय परिसर के पूर्वी प्रवेश-द्वार पर स्थापित सात शहीदों के तिरंगा आरोहण को प्रदर्शित करती समूह-मूर्ति स्वाधीनता संग्राम में सहर्ष बलिदान की अमरकीर्ति है। इस समूह-मूर्ति में जगपति कुमार चौथे स्थान पर हैं। एक छात्र को गोली लगती तो दूसरा आगे बढ़कर तिरंगा हाथ में थाम लेता था। इस प्रकार सात छात्रों ने शहादत दी थी। शहीद जगपति कुमार के परिवार में आजादी का जज्बा ऐसा था कि जगपति कुमार की माँ देवरानी कुँवर ने स्वाधीनता सेनानी पेंशन लेने से इनकार करते हुए कहा था कि मेरा बेटा देश के लिए शहीद हुआ, सुविधा पाने के लिए नहीं। आज विडंबना देखिए कि औरंगाबाद जिले के इस एकलौता शहीद के नाम पर जिला, शहर, गाँव की कोई गली, मुहल्ला, स्थान नहीं है। ओबरा प्रखंड के गाँव खरांटी में पुनपुन नदी के किनारे परिजनों ने अपनी जमीन में ही उनकी छोटी-सी प्रतिमा स्थापित कर रखी है। (जैसा कि उत्कर्ष संग्रह में लेखक उपेन्द्र कश्यप ने जिक्र किया है।)

डालमियानगर में किया था सीमेंट संयंत्र का उद्घाटन

सुभाष चंद्र बोस का उनके जन्मभूमि प्रदेश, उड़ीसा के पड़ोसी प्रदेश बिहार में तीन किलोमीटर चौड़ी पाट वाली नदी सोन के दोनों किनारों के इलाकों में आना-जाना था। उनका कोलकाता-दिल्ली कनेक्शन वाले उस समय के उँगली पर गिने जाने वाले देश के बड़े उद्योगपतियों

सीमेंट उत्पादक संयंत्र, डालमियानगर

में एक रामकृष्ण डालमिया से बेहतर संबंध था, जो मुस्लिम लीग के प्रमुख मोहम्मद अली जिन्ना के भी मित्र थे। रामकृष्ण डालमिया ने अंग्रेज प्रकाशक से दिल्ली-मुंबई स्थित टाइम्स ऑफ इंडिया समूह खरीदा था। वह राष्ट्रवादी विचारधारा के थे और स्वाधीनता सेनानियों की खुलकर मदद करते थे। इसीलिए आजादी से पहले डालमियानगर (बिहार) स्वाधीनता सेनानियों, क्रांतिकारियों का भी एक तीर्थस्थल था। रामकृष्ण डालमिया ने छोटे भाई जयदयाल डालमिया के साथ सोन नदी के पश्चिम किनारे डालमियानगर बसाकर एशिया विख्यात रोहतास उद्योगसमूह की नींव 18 मार्च, 1933 को रखी थी। इसी उद्योगसमूह के सीमेंट कारखाना की एक इकाई के डेनमार्क में निर्मित प्रतिदिन 500 टन सीमेंट उत्पादक संयंत्र का उद्घाटन 03 मार्च, 1938 को सुभाष चंद्र बोस ने किया था। हालाँकि ढाई सौ एकड़ का चिमनियों का चमन रहा रोहतास उद्योगसमूह का कारखाना परिसर, 1984 में संपूर्ण बंदी के बाद श्मशान बन गया और 2019 में इसकी हजारों करोड़ की दुर्लभ मशीनें काटकर कबाड़ के भाव महज 94 करोड़ रुपये में बेच दी गईं।

दिल्ली, काबुल होकर पहुँचे बर्लिन तो हिटलर ने किया स्वागत

देशद्रोह के आरोप में कोलकाता के प्रेसीडेंसी जेल में कैद सुभाष चंद्र बोस ने 29 नवंबर, 1940 से भूख हड़ताल कर दी। उनका स्वास्थ्य ज्यादा गिर गया तो 05 दिसंबर को बंगाल के गवर्नर जॉन हरबर्ट ने उन्हें उनके घर (38-2 एल्गिन रोड) भेज दिया, ताकि सरकार पर जेल में मौत का आरोप नहीं लगे। घर आने पर सुभाष चंद्र बोस ने भारत से पलायन की गुप्त योजना बनाई और विजिटिंग कार्ड छपाया—मोहम्मद जियाउद्दीन (बी.ए., एल.एल.बी.), ट्रैवलिंग इंस्पेक्टर, द एंपायर ऑफ इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, स्थायी पता : सिविल लाइंस, जबलपुर। उन्होंने 17-18 जनवरी, 1941 की रात परिवार के साथ आखिरी बार भोजन किया और रात डेढ़ बजे कार चालक के रूप में भतीजे शिशिर कुमार बोस के साथ वांडरर कार (बीएलए 7169) से गोमो (झारखंड) आकर दिल्ली के लिए कालका मेल ट्रेन पकड़ी थी। 19 जनवरी की सुबह पुरानी दिल्ली से फ्रंटियर मेल ट्रेन से पेशावर (पाकिस्तान) पहुँचने के बाद 20 जनवरी को जियाउद्दीन का चोला उतार दिया और गूँगे-बहरे पठान का वेश धारण किया। फॉरवर्ड ब्लॉक के दो साथियों (भगत राम तलवार, मोहम्मद शाह) के साथ 26 जनवरी, 1941 को ब्रिटिश भारत की सीमा पार की और अफगानिस्तान के कबाइली इलाके में पैदल यात्रा कर काबुल शहर पहुँचकर जर्मन दूतावास से संपर्क साधा। 18 मार्च, 1941 को इटली के राजदूत की रूसी पत्नी की मदद से इटालियन राजनयिक ऑरलैंडो मजोटा के पासपोर्ट पर अपनी तस्वीर चिपकाकर सुभाष चंद्र बोस जर्मन इंजीनियर वेंगर के साथ समरकंद और फिर वहाँ से ट्रेन से मास्को होते हुए जर्मनी की राजधानी बर्लिन पहुँच गए,

जहाँ हिटलर ने अंग्रेजों के इस दुश्मन नंबर-एक (सुभाष चंद्र बोस) का हाथ मिलाकर स्वागत किया।

टैगोर की कहानी 'बदनाम' में है पलायन का मार्मिक चित्रण

इधर, कोलकाता में सुभाष चंद्र बोस के कमरे में खाना पहुँचाने का नाटक होता रहा, ताकि अंग्रेजी सरकार के जासूसों को पलायन की भनक नहीं लगे। 27 जनवरी, 1941 को अदालत में बोस के खिलाफ मुकदमे की सुनवाई होनी थी। 26 जनवरी को सुभाष के दो भतीजों ने पुलिस को खबर दी कि सुभाषचंद्र बोस घर से गायब हैं। 27 जनवरी को उनके गायब होने की खबर कोलकाता के 'आनंदबाजार पत्रिका' और 'हिंदुस्तान हेरल्ड' में छपी। फिर समाचार एजेंसी 'रायटर' के जरिये यह खबर पूरी दुनिया में फैल गई। भतीजे शिशिर कुमार बोस ने सुभाष चंद्र बोस से संबंधित संस्मरण में लिखा है कि उन्होंने और उनके पिता ने सुभाष चंद्र बोस के संन्यास ले लेने की अफवाह फैलाई। महात्मा गांधी को भी ठीक जवाब नहीं दिया गया, मगर रवींद्रनाथ टैगोर से झूठ नहीं बोला जा सका। महात्मा गांधी के टेलीग्राम पर सुभाष चंद्र बोस के भाई शरदचंद्र बोस ने तीन शब्द का जवाब दिया—सरकमस्टान्सेज इंडीकेट रिनुनसिएशन (हालात का इशारा संन्यास की तरफ)। जबकि रवींद्रनाथ टैगोर के तार का जवाब दिया—सुभाष जहाँ कहीं भी हों, उन्हें आपका आशीर्वाद मिलता रहे। इसीलिए मृत्यु (अगस्त 1941) से पहले लिखी गई रवींद्रनाथ टैगोर की अंतिम कहानी (बदनाम) में आजादी की तलाश में निकले अकेले पथिक की अफगानिस्तान के बीहड़ रास्तों से गुजरने का मार्मिक चित्रण है।

आजाद हिंद फौज में थे रोहतास जिले के दो सिपाही

सुभाष चंद्र बोस ने जापान की सहायता से टोक्यो में 1942 में रासबिहारी बोस द्वारा स्थापित की गई इंडियन नेशनल आर्मी (आजाद हिंद फौज) की कमान बतौर सुप्रीम कमांडर 04 जुलाई, 1943 को सँभाली और ब्रिटेन की ओर से लड़ने वाले भारतीय सैनिकों को आजाद हिंद फौज में शामिल किया। उन्होंने आजाद हिंद फौज को सुसंगठित करने के साथ आजाद हिंद सरकार और आजाद हिंद रेडियो की भी स्थापना की। उनके नेतृत्व में आजाद हिंद फौज सिंगापुर से दिल्ली के लिए पैदल ही मार्च कर

वशिष्ठ पांडेय

अंडमान-निकोबार में तिरंगा फहराते हुए 1944 में भारत की मुख्यभूमि कोहिमा तक पहुँच गई थी। मगर अचानक द्वितीय विश्वयुद्ध का पासा पलट गया। जर्मनी और जापान ने हार मान ली। सुभाष चंद्र बोस को टोक्यो जाना पड़ा। आजाद हिंद फौज के कर्नल सहगल, कर्नल ढिल्लन, मेजर शाहनवाज खान आदि सैन्य अफसरों-सैनिकों को अंग्रेजी सेना ने बंदी बना लिया। बंदी बनाए गए फौजियों में दूसरे देश की भूमि पर लड़ने वालों में दो फौजी रोहतास जिले के सरदार रमीन्दर सिंह और कैमूर जिले के वशिष्ठ पांडेय भी थे। ब्रिटिश सेना के सिपाही (संख्या एमई 46386) सरदार रमीन्दर सिंह पंजाब के गुजरान जिले के मल्लू गाँव वासी सरदार गंगा सिंह के पुत्र थे, जिनकी पलटन को हराकर जर्मनी-इटली की सेना ने लीबिया में बंदी बनाया था। जब वह आजाद हिंद फौज में शामिल हुए, तब उनका सिपाही क्रमांक 1017 हो गया। रमीन्दर सिंह को अन्य सैनिकों के साथ भारत के बहादुरगढ़ शिविर जेल में लाया गया।

सरदार रमीन्दर सिंह

25 नवंबर, 1940 को इंडियन आर्मी मेडिकल कोर में भर्ती हुए कैमूर जिले के दुर्गावती प्रखंड के नुआंव गाँव के रामप्रसाद पांडेय के पुत्र वशिष्ठ पांडेय 22 दिसंबर, 1941 को पानी के जहाज से मुंबई से निकले और 07 जनवरी को सिंगापुर पहुँचे थे, जहाँ ब्रिटेन और जापान के सैनिकों के बीच युद्ध जारी था। जापान ने ब्रिटेन से सिंगापुर जीत लिया तो ये ब्रिटेन की ओर से लड़ने वाले सैनिकों के साथ युद्धबंदी बना लिए गए। फिर आजाद हिंद फौज में शामिल होकर ब्रिटिश सेना से लड़ाई लड़ी। ब्रिटिश सेना से हार जाने के बाद इन्हें अन्य सैनिकों के साथ बंदी बनाकर भारत में बंगाल के जिगरगच्छा शिविर जेल में लाया गया। कर्नल सहगल, कर्नल ढिल्लन, मेजर शाहनवाज सहित आजाद हिंद फौज के कमांडरों-सिपाहियों को फाँसी की सजा सुनाई गई। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, भूलाभाई देसाई, तेजबहादुर सप्रू द्वारा कोर्ट में अपील की गई। इनकी फाँसी की सजा माफ हुई। अन्य फौजियों के साथ ये दोनों भी 1946 में सेना से बर्खास्त किए गए। बर्खास्तगी के बाद सरदार रमीन्दर सिंह पंजाब जाने के बजाय सोन नद के किनारे स्थित डेहरी-आन-सोन में आकर बस गए।

(दुर्भाग्यवश वरिष्ठ कलमकार श्री कृष्ण किसलय अब हमारे बीच नहीं रहे। 06 जून, 2021 को उनका स्वर्गवास हो गया।)

मुझमें ज्योति और जीवन है

श्रीकृष्ण सरलजी ने अपने लेखकीय जीवन में लगभग सवा सौ पुस्तकों की रचना की। इनमें 100 से अधिक पुस्तकें क्रांतिकारियों और उनकी शहादत के जीवंत चित्रण से परिपूर्ण हैं। जब हम सरलजी की वंशबेल को टटोलते हैं तो यह कहने में कोई अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती कि राष्ट्रभक्ति उनके रक्त में विद्यमान थी। सरलजी के पूर्वज मध्य प्रदेश के शिवपुरी जिले के गणेशखेरा गाँव के जागीरदार थे जो ओंदीला रियासत का भाग था। सन् 1811 में अंग्रेज जनरल फिलोसे के आक्रमण के समय उनके पूर्वज राजा के साथ अंग्रेजों के खिलाफ लड़कर शहीद हुए। युद्ध के बाद जब अंग्रेजी सेना रसद और घोड़ों के लिए घास की तलाश में गाँव में पहुँची तो इनके परिवार की महिलाओं ने किसी भी सहयोग से साफ इनकार कर दिया। इस पर अंग्रेजों ने गाँव में कत्लेआम कर दिया। सैकड़ों महिलाओं और बच्चों को तलवारों से काट डाला गया। परिवार की एक गर्भवती महिला किसी तरह बच गई, उससे उत्पन्न पुत्र से यह परिवार आगे चला। पहले ये लोग आगरा गए और फिर इनके पिता भगवती प्रसाद बिरथरे जीविकोपार्जन के लिए आगरा से आकर ग्वालियर राज्य के अशोकनगर में बस गए। यहीं 01 जनवरी, 1919 को श्रीकृष्ण सरलजी का जन्म हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा और राष्ट्रभक्ति का अंकुरण भी अशोकनगर में ही हुआ।

दिनेश पाठक

विगत तीन दशकों से देश के प्रमुख राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं हेतु कला, संस्कृति, साहित्य, फिल्म एवं संगीत विषयक लेखन में सक्रिय। व्यक्तित्वपरक आलेख एवं साक्षात्कार में विशेष कार्य, तीन खंडीय पुस्तक शीघ्र प्रकाश्य। आकाशवाणी, दूरदर्शन एवं विभिन्न टीवी चैनलों से कार्यक्रम/रूपक/वृत्तचित्र लेखन, निर्माण एवं प्रस्तुतकर्ता के रूप में लंबा जुड़ाव।

संप्रति : म.प्र. शासन में प्रथम श्रेणी अधिकारी।

संपर्क : मोबाइल– 9425775260

ई-मेल : dpathak 2005@gmail.com

सरलजी का अधिकांश लेखन कथात्मक है, चाहे वह गद्य हो या पद्य। गद्य में आपने कहानियाँ और उपन्यास अधिक लिखे हैं और पद्य में खंड काव्य तथा महाकाव्य अधिकांश रचनाओं में राष्ट्रप्रेम मुखर है। शहीद क्रांतिकारियों के जीवन के छोटे-से-छोटे पहलू का भी ऐसा जीवंत चित्रण सरलजी ने अपनी रचनाओं में किया है कि पाठक रचना को पढ़ते हुए स्वयं को उसी देशकाल में अनुभूत कर रोमांचित हो उठता है। श्रीकृष्ण सरलजी की लेखनी से शहीदों की गाथाओं का जीवंत चित्रण हुआ है, उनकी रचनाओं की वर्णनात्मक अभिव्यंजना पर मानस का पूर्ण प्रभाव है।

श्रीकृष्ण सरल

सरलजी के लेखन की इस विशिष्टता का श्रेय उनके रामायण प्रेम को निस्संकोच दिया जा सकता है। उनका मानना था कि, 'रामचरितमानस के सांस्कृतिक अवदान का जितना महत्व है, उतना ही महत्व उसके साहित्यिक अवदान का भी है।' सन् 1944 में गुना के एक कवि सम्मेलन में सरलजी ने छात्र कवि के रूप में यह कविता पढ़ी—

> कवि मैं करने आया पुकार
> कुछ अपनी कुछ मानवता की
> लेकर अस्फुट से शब्द चार
> कवि मैं करने आया पुकार...

कविता, सम्मेलन में बहुत सराही गई। हाईस्कूल के प्रधानाचार्य ने उन्हें अपने कार्यालय में बुलाया और यह जानकर कि वे इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण करके बी.ए. की तैयारी कर रहे हैं, अपने विद्यालय में शिक्षक के पद पर नियुक्ति का प्रस्ताव रखा, जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

जीविकोपोर्जन की व्यवस्था होने के बाद सरलजी का काव्य लेखन तीव्र गति से निरंतर चलने लगा और समय के साथ-साथ उसमें निखार भी आता गया। उनके कई काव्य संकलन प्रकाशित हुए और अखिल भारतीय कवि सम्मेलनों में उनकी निरंतर प्रतिभागिता भी बढ़ गई। उन्हीं दिनों एक घटना घटी जिसने श्रीकृष्ण सरलजी की काव्य यात्रा को एक विशिष्ट दिशा दी। ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज (महारानी लक्ष्मीबाई महाविद्यालय) में हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. गुरुप्रसाद टंडन से सरलजी का अकसर मिलना होता रहता था। एक दिन वे अपनी काव्य कृति—'कवि और सैनिक' की पांडुलिपि लेकर प्रो. गुरुप्रसाद टंडन के पास इस अनुरोध के साथ पहुँचे कि वे उक्त काव्य संकलन की भूमिका लिख दें। उन्हीं दिनों उनके पिता परम विद्वान राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन भी उनके पास आए हुए थे। गुरुप्रसादजी ने उनसे सरलजी का परिचय कराया। कुछ दिन बाद जब सरलजी अपनी काव्य पांडुलिपि लेने टंडन के पास गए, तो उनके पिता व ख्यात विद्वान राजश्री पुरुषोत्तम दास टंडन ने चर्चा करते हुए कहा कि, 'सरलजी आपकी कई काव्य कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, अब आप कोई महाकाव्य क्यों नहीं लिखते? आपकी काव्य कृति 'कवि और सैनिक' में मुझे प्रबंध लेखन की समस्त विशेषताएँ नजर आती हैं। मुझे विश्वास है कि आप, एक अच्छा महाकाव्य अवश्य लिख सकेंगे।'

सरलजी ने उनसे निवेदन किया, "पूज्यवर महाकाव्य लिखने की प्रेरणा आपने दी है तो उसके लिए कोई सुयोग्य पात्र का नाम भी सुझाने की कृपा करें।"

राजर्षि टंडनजी बोले, "पौराणिक आख्यानों पर तो कई महाकाव्य लिखे जा चुके हैं, आप राष्ट्रीय चेतना पर कोई महाकाव्य लिखें, और इसके लिए मेरी दृष्टि में शहीद भगतसिंह उपयुक्त पात्र हैं। हमारा राष्ट्र उसका ऋणी है, एक साहित्यकार ही उसका ऋण चुका सकता है। वैसे भी हमारे देश में शहीदों पर बहुत कम लिखा गया है। यदि आप इस क्षेत्र में कुछ कर सकेंगे तो हिंदी साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति कर सकेंगे।"

इस प्रकार राजर्षि टंडन से प्रेरणा पाकर श्रीकृष्ण सरल के लेखन को एक नई दिशा मिल गई और उन्होंने उपलब्ध क्रांति साहित्य का अध्ययन प्रारंभ कर दिया। कई वर्ष गुजर गए, शहीद भगतसिंह पर महाकाव्य लेखन प्रारंभ करने से पूर्व सरलजी ने पंजाब जाकर हुसैनीवाला स्थित भगतसिंह की समाधि पर नमन करने का विचार किया। हुसैनीवाला से लौटकर वे जालंधर के खटकड़कलाँ गाँव में शहीद भगतसिंह की पूज्य माताजी श्रीमती विद्यावती से मिलने और आशीर्वाद लेने पहुँचे।

निरंतर कई वर्षों के अथक परिश्रम के बाद अंततः 23 मार्च, 1964 को भगतसिंह के शहादत दिवस पर वह घड़ी आई जब यह महाकाव्य प्रकाशित हुआ। सरलजी के अनुरोध पर शहीद भगतसिंह की पूज्य माता विद्यावतीजी ने महाकाव्य के लोकार्पण के लिए उज्जैन आना स्वीकार कर लिया। शहीद माता के दर्शनों के लिए सारा उज्जैन उमड़ पड़ा, नगर में उनकी शोभा यात्रा निकाली गई। महाकाव्य का लोकार्पण करते हुए शहीद माता ने कहा, "मेरे बेटे पर लिखा गया यह ग्रंथ हाथ में लेते हुए मुझे ऐसा लग रहा है कि जिस बेटे को मैंने लाहौर में खोया था, उसे उज्जैन में पा लिया। मैं इस ग्रंथ को गोद में रखकर यह अनुभव कर रही हूँ मानो मेरा भगत मेरी गोद में बैठकर मुझसे बात कर रहा है।"

उस दिन उसी भरी सभा में शहीद भगतसिंह की माताजी ने श्रीकृष्ण सरलजी से यह वचन भी लिया कि वे अन्य शहीदों पर भी ऐसे ही ग्रंथ लिखेंगे। सरलजी ने अपना अँगूठा चीरकर रक्त से उनका तिलक करके उनको वचन दिया कि मेरी लेखनी सदा शहीदों को

समर्पित रहेगी। इस महाकाव्य के अनेक संस्करण प्रकाशित हुए। तत्पश्चात् सरलजी की लेखनी का अविरल प्रभाव शहीदों की गाथाओं को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए गतिशील हो गया। शहीद चंद्रशेखर आजाद के व्यक्तित्व और कृतित्व पर आधारित उनके महाकाव्य, 'अजेय सेनानी चंद्रशेखर आजाद' का प्रकाशन 27 फरवरी, 1965 को हुआ। कुछ अंतराल के बाद सरलजी ने महाकाव्य 'सुभाष चंद्र' की रचना की जिसमें एक नई शैली का प्रयोग करते हुए भिन्न तुकांत छंद में काव्य रचना की गई। तदुपरांत, पाठकों के सुझाव पर उन्होंने परंपरागत तुकांत शैली में, एक और महाकाव्य 'जय सुभाष' लिखा। इसका प्रकाशन 23 जनवरी, 1981 को किया गया। नेताजी सुभाष चंद्र बोस पर तथ्यों के संकलन के लिए सरलजी ने स्वयं के व्यय से उन 12 देशों का भ्रमण किया जहाँ नेताजी और उनकी आजाद हिंद फौज ने आजादी की लड़ाइयाँ लड़ी थीं। शहीद अशफाक उल्ला खाँ पर सरलजी द्वारा लिखित महाकाव्य कदाचित किसी मुस्लिम पात्र पर लिखा गया हिंदी का पहला महाकाव्य है। इसका प्रकाशन 09 अगस्त, 1983 को हुआ। इस बीच श्रीकृष्ण सरलजी निरंतर 'क्रांतिकारी कोष' पर भी कार्य करते रहे जिसके पाँच खंडों में उन्होंने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम से लेकर 1961 के गोवा मुक्ति आंदोलन तक के लगभग 450 जाने-अनजाने शहीदों का प्रामाणिक विवरण पूर्ण जीवंतता से दिया है।

सरलजी के संपूर्ण रचनासंसार से एक बात निरंतर उभरकर आती है कि प्रकृति ने ही सरलजी की कलम को इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए चुना था। इस संपूर्ण रचना कर्म के दौरान, सरलजी को कई बार विलक्षण अनुभव एवं प्रेरणाएँ भी प्राप्त हुईं। एक ऐसे ही विलक्षण अनुभव के बारे में अपने संस्मरणों में सरलजी ने लिखा है, 'मध्य प्रदेश के खंडवा जिले के हरसूद में एक कवि सम्मेलन के बाद जब वे अपने साथी कवियों के साथ रात्रि विश्राम कर रहे थे, तब सुबह के लगभग चार बजे, उन्हें एक तेज रोशनी आँखों पर महसूस हुई और उनकी नींद खुल गई। तभी उन्हें एक धीर-गंभीर स्वर सुनाई पड़ा, "तुमने बहुत कुछ लिखा है, लेकिन स्वामी विवेकानंद पर कुछ नहीं लिखा, मैं चाहता हूँ तुम स्वामी विवेकानंद पर भी कुछ लिखो।"' कुछ ही क्षणों में वह स्वर और प्रकाश विलीन हो गया। सरलजी उठकर बैठ गए और विचार करने लगे। कुछ वर्ष बाद ठीक वैसा ही अनुभव उन्हें पुनः हुआ तो उन्होंने इसे नियति का आदेश मानते हुए स्वामी विवेकानंद पर उपलब्ध साहित्य का अध्ययन प्रारंभ कर दिया जिसका प्रतिफल, 'विवेकांजली' काव्य संकलन और 'विवेकश्री महाकाव्य' के रूप में वर्ष 1988 में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुआ।

> **"मध्य प्रदेश के खंडवा जिले के हरसूद में एक कवि सम्मेलन के बाद जब वे अपने साथी कवियों के साथ रात्रि विश्राम कर रहे थे, तब सुबह के लगभग चार बजे, उन्हें एक तेज रोशनी आँखों पर महसूस हुई और उनकी नींद खुल गई। तभी उन्हें एक धीर-गंभीर स्वर सुनाई पड़ा, "तुमने बहुत कुछ लिखा है, लेकिन स्वामी विवेकानंद पर कुछ नहीं लिखा, मैं चाहता हूँ तुम स्वामी विवेकानंद पर भी कुछ लिखो।"**"

अक्तूबर 1989 में सरलजी ने बाल गंगाधर तिलक पर 'स्वराज तिलक' नामक महाकाव्य की रचना की। भारत की धरती पर जन्मी मैडम भीकाजीकामा को 'महारानी दुर्गावती और महारानी लक्ष्मीबाई' की कोटि की वीरांगना मानने वाले सरलजी ने उन पर महाकाव्य 'क्रांतिज्वाला कामा' की रचना की, जो 02 अक्तूबर, 1990 को प्रकाशित हुई। शहीद करतार सिंह सराभा के जीवन चरित्र पर आधारित महाकाव्य, 'बागी करतार' 27 फरवरी, 1992 को प्रकाशित हुआ। एक अन्य विषद, महाकाव्य 'क्रांतिगंगा' जिसका विस्तार 1757 में प्लासी युद्ध से लेकर सन् 1961 के गोवा मुक्ति संग्राम तक था, का प्रकाशन 23 मार्च, 1994 को हुआ। 3,000 पृष्ठ में इस महाकाव्य का 'चरितनायक' स्वयं क्रांति आंदोलन ही है। इस महाकाव्य को भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का काव्यमय इतिहास भी कहा जा सकता है। इसमें लगभग एक हजार क्रांतिकारियों के प्रामाणिक जीवनवृत्त प्रस्तुत किए गए हैं और उनके तीन सौ से अधिक चित्र भी हैं। श्रीकृष्ण सरलजी ऐसे समर्पित और संघर्षशील साहित्यकार थे जिन्होंने लेखन में कई विश्व कीर्तिमान स्थापित किए हैं। जहाँ उन्होंने गद्य में लगभग 120 ग्रंथों का प्रणयन किया है वहीं सर्वाधिक क्रांतिलेखन और सर्वाधिक 12 महाकाव्यों की रचना का श्रेय भी उन्हें जाता है। वे प्राध्यापक के पद से सेवानिवृत्त होकर आजीवन साहित्य साधना में रत रहे। श्रीकृष्ण सरलजी ने देशभक्ति के इस कठिन कार्य को करने के बाद जब जीवन के उत्तरार्ध में ईश्वर भक्ति की ओर रुख किया, तो उन्हें सर्वप्रथम गोस्वामी तुलसीदासजी का ही स्मरण हुआ और उन्होंने समाज की ओर से उनका ऋण चुकाने के दृष्टिकोण से 'तुलसीमानस' की रचना की। तुलसीमानस के सात सर्गों में से छह सर्ग गोस्वामी तुलसीदासजी पर हैं और एक सर्ग में वह संक्षित रामकथा है जो उन्होंने अपने गाँव वालों को सुनाई थी। महाकाव्य 'तुलसीमानस' में 612 पृष्ठ हैं। सरलजी ने यह महाकाव्य मात्र 81 दिनों में लिख लिया था। इसके उपरांत उन्हें अनुभूति हुई कि रामायण के संदर्भ में एक व्याख्यात्मक पुस्तक और लिखना चाहिए क्योंकि समय के व्यतीत होने के साथ-साथ जीवन मूल्यों में भी परिवर्तन होता है और हमें वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उन्हीं मूल्यों की पुनर्व्याख्या करनी होती है। तुलसीकृत रामायण में मानव प्रेम, पारिवारिक सुमति, राजा-प्रजा संबंध, लोगों में सौहार्द और सौमनस्य, सांप्रदायिक सद्भाव, छुआछूत, संत-समादर, प्रकृति प्रेम, पर्यावरण सुरक्षा, नीति-रीति और स्वदेश प्रेम के प्रसंग मिलते हैं, पर आधुनिक युग की आवश्यकता के अनुसार उन्हें अधिक महत्व देने अथवा उनकी पुनर्व्याख्या की आवश्यकता है और यही काम 'सरल रामायण' में किया गया है। इस रचना में 1,000 पृष्ठ हैं और उन्होंने इसे मात्र 88 दिन में दिन-रात लिखकर पूर्ण किया था। स्पष्ट है यह किसी विलक्षण शक्ति की प्रेरणा के बिना संभव नहीं था। यदि हम श्रीकृष्ण सरलजी की प्रारंभिक रचनाओं पर गौर करते हैं तो पाते हैं कि उनके लेखन को दिशा देने में भी 1944 के कवि सम्मेलन की वह कविता ही प्रमुख थी जिसमें उन्होंने, राष्ट्रीयता के धरातल पर गोस्वामी तुलसीदास के समय और तत्कालीन समय का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया था। सरलजी जीवनपर्यंत विलक्षण रचना कर्म से जुड़े रहे और 01 सितंबर, 2000 को इस संसार से विदा होने के पूर्व उन्हें विभिन्न संस्थाओं के द्वारा 'भारत-गौरव', 'राष्ट्र कवि', 'क्रांति-कवि', 'क्रांति रत्न', 'अभिनव-भूषण', 'मानव-रत्न', 'श्रेष्ठ-कला-आचार्य' आदि अलंकरणों से विभूषित किया जा चुका था।

सरलजी की एक प्रतिनिधि रचना है जो उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की सटीक व्याख्या करती है—

मुझमें ज्योति और जीवन है
मुझमें यौवन ही यौवन है
मुझे बुझाकर देखे कोई
बुझने वाला दीप नहीं मैं
जो तट पर मिल जाया करती
ऐसी सस्ती सीप नहीं मैं
शब्द शब्द मेरा मोती है
गहन अर्थ ही सच्चा धन है
मुझमें ज्योति और जीवन है

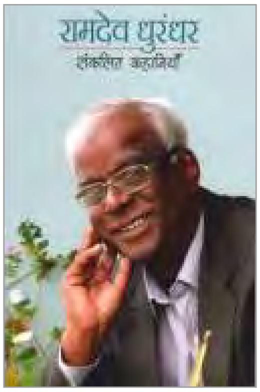

समीक्षक : **बीरेन्द्र कुमार चौधरी**
लेखक : **रामदेव धुरंधर**
प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070
पृष्ठ : 252
मूल्य : रु. 260/-

रामदेव धुरंधर : संकलित कहानियाँ

मानवीय सभ्यता ने हजारों साल के अपने विकास के दौर में कई बदलाव देखे। एक ओर आदिम जंगली जीवन जीने का अनुभव पाया तो दूसरी ओर आज के सभ्य समाज वाली उच्च स्थिति को प्राप्त किया। विकास के इसी दौर में न जाने कितने संघर्षों का उसे सामना करना पड़ा। कभी स्वतंत्रता का स्वाद चखा तो कभी गुलामी का दंश भी झेला। गुलामी के दौर में अंग्रेजों और फ्रांसीसियों ने हमारे देश में बड़ी संख्या में लोगों को गुलाम बनाया और उन्हें ले जाकर अलग-अलग देशों में अपने फायदे के लिया बसाया तथा उनसे हर तरह का काम लिया। यही नहीं उन्हें गुलामों के बाजार में बेचकर भी धन कमाया।

मॉरिशस ऐसा ही एक देश है जहाँ भारतीय बहुतायत से रहते हैं। यहाँ के अधिकांश लोग हिंदी बोलते हैं। रामायण और महाभारत की कथा इनके प्रिय विषय हैं। हमारे देश में लोग खुद को अंग्रेजीदा जताने में गर्व समझते हैं, पर भारतभूमि से हजारों मील दूर मॉरिशस में लोग हिंदी को अपना सर्वस्व मानते हैं। वे न केवल आपस में हिंदी और भोजपुरी में बातें करते हैं, बल्कि कुछ लोग तो साहित्य की रचना भी करते हैं। इन्हीं रचनाकारों में से एक हैं रामदेव धुरंधर। अपने हिंदी साहित्यप्रेम और साधना के बारे में रामदेव लिखते हैं—"सन् 1834 में यहाँ पहुँचे भारतीय मजदूर कितने बड़े जादूगर हो सकते थे जो भारतीयता के गान से यहाँ अपनी स्थापना कर पाते। पर हमारे पूर्वजों की विजय तो यही है कि कोड़ों की मार से उनकी खाल उधेड़ी जाती थी, फिर भी उन्होंने अपने सत्व को बचाए रखा। वह हिंदी ही थी जिससे यहाँ मंदिरों का निर्माण हुआ और भारतीयता के अनेकानेक क्षितिज खुलते गए।" वे स्वीकार करते हैं कि प्रेमचंद ने मुझे सिखाया है कि "बोलना है तो पूरा बोलो। मैं फणीश्वरनाथ रेणु को अपना लेखकीय गुरु मानता हूँ।"

रामदेव धुरंधर विदेशों में हिंदी लेखन में संलग्न साहित्यकारों में से एक महान साहित्यकार हैं। इनकी लेखनी मानो जीवंतता की प्रतिमूर्ति है। अपने लेखन के बारे में वे कहते हैं कि मैंने हमेशा से लेखन का अपना यही आदर्श बना रखा है—'रचना एक सर्जन का नाम है।' मैं जिसकी सर्जना करूँ, उसके प्रति ईमानदार होना मेरी पहली कसौटी है और सर्जना की ईमानदारी इनके हर साहित्य में बखूबी देखने को मिल जाती है। साहित्य की अलग-अलग विधाओं में इन्होंने अब तक एक दर्जन के करीब पुस्तकों की रचना कर डाली है और यह रचनाधर्मिता आज भी बदस्तूर जारी है। इसी कड़ी में यह कहानी संग्रह एक अत्यंत रोचक और पठनीय पुस्तक है। इस पुस्तक की हर कहानियाँ सरस, सारगर्भित और रुचिकर हैं। प्रेमचंद की कहानियों की तरह ही इस पुस्तक की प्रत्येक कहानी न केवल पठनीय है, बल्कि प्रत्येक का अपना निहित संदेश है।

'छोटी उम्र का सफर' में जहाँ लेखक ने बाल मनोभाव को उकेरने का प्रयत्न किया है वहीं एक वैज्ञानिक शोधकर्ता के अंतर्मन में चलने वाले द्वंद्व को बड़ी सजीवता के साथ दर्शाया है। अपने प्रयोग के लिए वह 'वरदान' नाम के एक बच्चे को, जो विशिष्ट गुणों की खान है, उठा तो लेता है, पर उसके इस चोरी का भेद न खुले, इसके लिए वह हरसंभव उपाय करता है। वहीं उसके दादी का रोना, अपने बच्चों के साथ उसका घुल-मिल जाना, अपनी कर्कशा पत्नी के हृदय में उठी ममता की झलक और वरदान को वापस छोड़ते समय अंतरात्मा की आवाज का बड़ा ही सटीक वर्णन किया है।

वहीं 'दो किनारों के बीच' कहानी में लेखक नायक के मन की उस उलझन पर प्रकाश डालता है जिसमें एक ओर संतान न होने की चुभन और उसे पूरा करने के लिए अपनी बहन के एक पुत्र को गोद लेना, पत्नी के मर जाने के बाद मन के कोमल भाग में वासना का जिंदा रहना, अपने से काफी कम उम्र की लड़की के साथ दूसरी शादी और उसका दुखद परिणाम; सभी घटनाओं को एक-दूसरे से गुंफित करने की कला का निर्वहन बड़ी बारीकी के साथ किया गया है। इसके अलावा खंडहर से आती आवाज, अस्थि तर्पण, दादा का चश्मा, एक तारा जो टूटा, कैसे-कैसे मंजर, परी के आने से, सीमांत, जीवन के अजूबे, धृतराष्ट्र की आँख, मृत्यु का परिचय आदि कई कहानियाँ इस पुस्तक में संकलित हैं। सभी कहानियों का संवाद पढ़ने के दौरान ऐसा जान पड़ता है मानो घटना हमारी आँखों के सामने घटित हो रही हो। पुस्तक की समस्त कहानियों की भाषा सहज, सरल और सुबोध्य है। आम बोलचाल की भाषा में रचित ये कहानियाँ पठनीय हैं।

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखिका : **डॉ. मंजू देवी**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 118

मूल्य : रु. 145/-

बच्चों को प्यार दें

डॉ. मंजू देवी (मनोविज्ञान विषय की एसोसिएट प्रोफेसर) की पुस्तक 'बच्चों को प्यार दें' में कुल 12 अध्याय हैं। साथ ही, एक ऐसा परिशिष्ट भी संलग्न है, जिसमें 'संयुक्त राष्ट्र महासभा' द्वारा 20 नवंबर, 1989 को पारित बच्चों का अधिकार का उल्लेख है। डॉ. मंजू की अब तक आधा दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं तथा लाखों बच्चों से जुड़े विभिन्न तरह के कार्यक्रमों में कार्य करने के चलते उन्हें बच्चों के कार्य और व्यवहार का व्यापक एवं गहरा अनुभव है।

'बच्चों के लिए प्यार आवश्यक क्यों?' अध्याय के अंतर्गत उन्होंने रेखांकित किया है कि प्यार से वंचित बच्चों में शारीरिक विकास की गति मंद हो जाती है। ऐसे बच्चे समाज के लोगों से दूर रहना चाहते हैं तथा आसानी से लोगों से घुल-मिल नहीं पाते।

कई बार यह देखा गया है कि सामाजिक, सांस्कृतिक दबाव के फलस्वरूप परिवार के लोग बेटियों की अपेक्षा बेटों को अधिक प्यार और दुलार करते हैं। बेटों को वे अपनी आँखों का तारा समझते हैं और बेटियों को बोझ। घर के लोग नहीं समझ पाते हैं कि ऐसा करने से बच्चों के जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस अध्याय में लेखिका ने महान कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता 'बचपन' को उद्धृत किया है। इस कविता में कवयित्री ने बचपन की स्मृतियों को इतने भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है कि इस कविता को पढ़ते ही पाठक बचपन की भोली स्मृतियों में खो जाता है। हालाँकि ऐसे बच्चों की संख्या भी अनगिनत है, जिन्हें बचपन में अभाव, दुत्कार, उपेक्षा के कारण हर कदम पर परेशानियों का सामना करना पड़ता है। बड़े होने पर वे भूलकर भी उन दिनों को याद करना नहीं चाहते।

'बच्चे : अनमोल निधि' अध्याय में लेखिका ने बड़ी शिद्दत से रेखांकित किया है कि जिन परिवारों में बच्चों को माता-पिता का भरपूर प्यार मिलता है, हर तरह का प्रोत्साहन और संरक्षण मिलता है, वहाँ बच्चों में मनोवैज्ञानिक समस्याएँ पैदा नहीं होतीं। इस अध्याय में भी लेखिका ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, डॉ. शेर जंग गर्ग की कविता के कुछ पद्यांशों के साथ सुदर्शन फाकिर के चर्चित गीत जिसे स्वनामधन्य गायक जगजीत सिंह ने गाया है—'ये दौलत भी ले लो, ये शोहरत भी ले लो, भले छीन लो तुम, मुझसे मेरी जवानी/मगर मुझको लौटा दो, वो बचपन का सावन, वो कागज की कश्ती, वो बारिश का पानी।' का उल्लेख किया है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा पारित प्रस्तावना में कहा गया है—

विश्व के सभी देशों में अत्यंत कठिन परिस्थितियों में अनेक बच्चे रह रहे हैं। उन बच्चों पर विशेष ध्यान दिया जाना जरूरी है। बच्चों के संरक्षण और सुसंगत विकास के लिए प्रत्येक राष्ट्र की परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों का पूरा ध्यान रखते हुए प्रत्येक देश में, खासतौर से विकासशील देशों में, बच्चों के जीने की स्थितियों में, सुधार के काम में अंतरराष्ट्रीय सहयोग के महत्व को समझते हुए 54 अनुच्छेदों में वर्णित निर्देशों का पालन करना जरूरी है।

भारत की वचनबद्धता का भी यहाँ संक्षेप में उल्लेख है।

'वर्तमान समय में बच्चों की स्थिति' अध्याय में लेखिका ने 'बच्चों में पोषण की स्थिति', 'बाल पोषण-अभिव्यक्तियाँ', 'शैक्षणिक स्थिति', 'गणना' 'आर्थिक स्थिति (बाल श्रमिक)', 'सामाजिक स्थिति', 'बाल अपराध', 'लापता होते बच्चे' शीर्षकों के अंतर्गत बच्चों के हालात पर प्रकाश डाला है।

'बच्चों की मासूमियत : कहीं खो न जाए', 'बच्चों की जिंदगी में बड़ों का हस्तक्षेप', 'प्यार देने में बेटे-बेटी में भेदभाव क्यों?', 'प्यार के अभाव में बच्चों में बढ़ती हिंसा की प्रवृत्ति', 'बच्चों को प्यार दें का, छत्तरी मॉडल (धनात्मक स्वरूप)', 'बच्चों को प्यार दें नकारात्मक (प्यार नहीं मिलने पर बच्चों पर पड़ने वाला दुष्प्रभाव)', 'स्कूलों में बच्चों की देखभाल और उन्हें मिलने वाला प्यार', 'बच्चों के विकास हेतु सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रयास', 'बच्चों के सम्यक विकास हेतु महत्वपूर्ण सुझाव एवं संस्तुतियाँ', में लेखिका ने बच्चों से जुड़े अनेक पक्षों पर गहराई से प्रकाश डाला है।

आज के बच्चे ही कल देश के योग्य नागरिक होते हैं। बचपन में मिलने वाले संस्कार ही आगे चलकर पुष्पित होते हैं। लैंगिक भेदभाव से बचपन सही रूप में विकसित नहीं हो पाता। बचपन की सोहबत का जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। परिवार बच्चों की प्रथम पाठशाला है। प्यार न मिलने के कारण बच्चे गलत संगत में फँस जाते हैं आदि...।

समग्रता में यह पुस्तक बच्चों के समग्र विकास की संदर्शिका है।

वैश्वीकरण और विकास

समीक्षक : **अनिता रश्मि**

लेखिका : **सुनंदा सेन**

अनुवादक : **दीपाली ब्राह्मी**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 126

मूल्य : रु. 150/-

सुनंदा सेन की 2007 में लिखित, प्रशंसित पुस्तक 'वैश्वीकरण और विकास' का यह संशोधित नवीन संस्करण है। इसमें वैश्वीकरण के दौर में विकासोन्मुख देशों पर एक जागरूक, गंभीर नजर डाली गई है, जो उत्कृष्ट, समाजोपयोगी और बेहद गंभीर मुद्‌दों को स्वर देती है।

वैश्विक महत्व की इस पुस्तक में छह अध्यायों के सहारे लेखिका ने वैश्वीकरण के इस उदात्त समय में विकास की गति पर ध्यान केंद्रित किया है।

प्रथम अध्याय है—'वैश्वीकरण : कुछ नए परिप्रेक्ष्य में'। सार्थक दखल के साथ वैश्विक स्थिति में बदलती व्यवस्था, नेतृत्व, द्वितीय विश्वयुद्ध की बाद की स्थितियों के आकलन, आरंभिक शताब्दियों में वैश्वीकरण की अच्छी चीर-फाड़ की गई है। उपनिवेश से मुक्ति तथा राष्ट्र राज्यों के उदय, सीमित विकास के अवसरों के चूक जाने के केस पर भी सम्यक दृष्टि डालते हुए वाशिंगटन समझौता तथा अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक की नव उदार नीति के प्रभाव आदि आठ भागों में काफी उपयोगी सामग्री है। हम विकास की स्थिति, उत्थान-पतन से नावाकिफ नहीं हैं, लेकिन वैश्वीकरण और विकास में विकास संबंधी प्रश्नों पर सारगर्भित विवेचना लेखकीय चिंतनशील दृष्टिकोण को दर्शाता है।

वैश्वीकरण के अंतर्गत बाजार के प्रभाव, उसके दुष्परिणाम से इनकार नहीं किया जा सकता। गुणवत्तायुक्त अनेक सुधार हुए हैं, तो कुछ खामियाँ भी हैं। कुशल कामगारों के लिए प्रौद्योगिकी में देश-विदेश में रोजगार की भरमार है, जिससे लोग भ्रमित भी हो रहे हैं... खासकर युवा। लेकिन अप्रशिक्षित, निर्धन कामगारों के हाथ से रोजगार का सहारा एक झटके में छूट जा रहा है। व्यापारिक समझौते हों या तकनीकी प्रासंगिक, सामयिक प्रसंगों ने अनेक सवालों के जवाब दिए हैं। विस्तारपूर्वक विगत-आगत की चर्चा इस अध्याय को विश्वसनीय बनाता है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी क्रांति ने हर हाथ में मोबाइल, घर-घर तक टीवी चैनलों की पहुँच को बेहद आसान बना डाला। भोजन हो-न हो, मोबाइल और टीवी हर घर की जरूरत बन गई है। हाँ, विकासशील देशों की भी।

बदलती व्यवस्था, वैश्वीकरण के अंतर्गत नेतृत्व...आरंभिक शताब्दियों के साथ द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की स्थितियों का निष्ठापूर्वक आकलन किया। इस दौरान बाजार के आधिपत्य पर भी उनकी कलम चली है। स्वदेश ही नहीं, अनेक देशों के विकास पथ पर गहरी नजर डालते हुए अच्छा विश्लेषण किया। विभिन्न देशों की बाजार नीतियों, विविध आँकड़ों के उदाहरणों द्वारा प्रामाणिक, समग्र प्रस्तुतिकरण चकित भी करता है। उद्योगों की अवनति, विकसित-विकासशील देशों के तुलनात्मक अध्ययन और वित्तीय प्रवाह, विकास के लाभ-हानियों सहित रोजगारों की गुणवत्ता आदि पर भी सार्थक, सामयिक, छिद्रान्वेषी चिंतन सहित विभिन्न देशों की विविधवर्णी असमानता के माध्यम से कमियों पर भी ध्यान दिलाया गया है। विकास के मुद्‌दे पर अनेक उठे सवालों का सटीक चित्रांकन विश्वसनीय है। ग्रामीण रोजगार की स्थिति, विस्थापन, पुरुष-स्त्री में बढ़ती बेरोजगारी दर, शहरी-ग्रामीण भारत का अंतर अर्थात बहुत सारे चिंतनीय विषय शामिल हैं। कुछ भी, कोई भी संपूर्ण नहीं होता...यह मोनोग्राफ भी नहीं है। फिर भी जितना कुछ है, पर्याप्त है।

उपसंहार में लेखिका ने पूरी शिद्‌दत से अर्थव्यवस्था के गंभीर संकट, कृषि, उद्योगों की स्थिति, अन्य लक्ष्यों के सामने वास्तविक प्रगति और जनकल्याण के पिछड़ जाने की वजह तलाश की है। यह गहन चिंतन से उपजी विकास संबंधी दूरगामी सोच को दर्शाती जरूरी, बेहद उपयोगी किताब है। विकसित देशों और विकासशील देशों के बीच के संबंधों की उचित पड़ताल करती है। गंभीर पाठकों को पसंद आएगी। अनुवाद भी शानदार। पुस्तक की विशेषता को बचाए रखने में सक्षम। प्रौद्योगिक उन्नति तथा विकास में आने वाली अड़चनों को भी समझने में मदद करेगी।

कश्मीर दर्पण

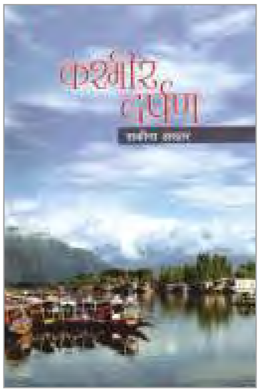

समीक्षक : **बीरेन्द्र कुमार चौधरी**

लेखिका : **सकीना अख़्तर**

प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

पृष्ठ : 186

मूल्य : रु. 200/-

भारतीय संस्कृति के विविध आयाम हैं जो अपने आप में अनुपम हैं। विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में फैले इस देश के विभिन्न प्रांतों एवं इन प्रांतों के अलग-अलग इलाकों की अपनी अलग सांस्कृतिक मान्यताएँ हैं। इन तमाम सांस्कृतिक मान्यताओं में कई ऐसे तत्व हैं जो सामान्य हैं, जैसे—हमारी धार्मिक मान्यताएँ, हमारी चिंतन प्रक्रिया, अध्यात्म के प्रति लगाव, संतों और फकीरों के प्रति आदर भाव, सामाजिक समरसता आदि। ये वही तत्व हैं

जिसके बल पर हम गर्व करते हैं और वसुधैव कुटुंबकम् की भावना को अपनी धरोहर मानते हैं। समाज की तरह ही साहित्य भी इन कारकों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। उस पर भी इसका प्रभाव भले ही देर से पड़े, पड़ता अवश्य है। सकीना अख़्तर द्वारा लिखी गई पुस्तक 'कश्मीर दर्पण' इसी सच्चाई को दर्शाने का काम करती है।

हिंदी साहित्य में जिस भक्ति आंदोलन की शुरुआत कबीरदास के जन्म के साथ 14वीं शताब्दी में हुआ था, उसकी झलक कश्मीर में मूलतः 18वीं सदी के उत्तरार्ध में देखने को मिलती है। यहाँ हमें निर्गुण भक्तिधारा के सूफीवाद की झलक देखने को मिलती है। इसका प्रमुख कारण कश्मीर में इस्लाम का आगमन माना जाता है। यूँ तो तमाम मुस्लिम आक्रांता हिंदुकुश की घाटी से होकर आए थे और जो अपने देश लौटने वाले थे, वे भी इसी रास्ते से वापस चले गए, पर उन्होंने कश्मीरी जीवन-शैली को किसी भी तरह से प्रभावित नहीं किया। इस संदर्भ में लेखिका लिखती हैं कि 'कश्मीरी साहित्य में सन् 1379 से 1795 तक सूफी प्रबंध काव्यों का अभाव रहा, जबकि भारत में उनका प्रचलन प्रचुर मात्रा में हुआ। सूफी प्रबंध काव्यों की रचना कश्मीर में 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में होने लगी।' उन दिनों कश्मीर की साहित्यिक भाषा फारसी थी और इसी भाषा में काव्यों की रचना होती थी। वे लिखती हैं कि 'महमूद गामी' (सन् 1765-1855) ने कश्मीरी प्रबंध काव्यों को फारसी प्रेमाख्यानों की डगर पर डाल दिया। हालाँकि भाषा कश्मीरी ही रही, किंतु शैली पूर्णतः फारसी अपनाई। इस पुस्तक की प्रासंगिकता को बढ़ाने और पाठकों की अभिरुचि और ज्ञान को बढ़ाने की दृष्टि से लेखिका ने कश्मीरी साहित्य का प्रामाणिक स्तर पर काल निर्धारण भी करने का प्रयास किया है और उस दौर के प्रमुख भक्त कवियों के बारे में विस्तार से परिचय एवं रचनाओं का भी उल्लेख किया है। लेखिका ने पुस्तक को दो खंडों में विभाजित करते हुए पहले खंड को 'कश्मीर दर्पण' और दूसरे को 'कश्मीरी लोक कथाएँ' के नाम से अभिहित किया है। 'कश्मीर दर्पण' खंड में लेखिका ने सूफी कवियों एवं उनके काव्यों का परिचय तथा निर्गुण संत कवियों का तुलनात्मक अध्ययन तो किया ही है, साथ ही कश्मीर के लोक कवियों और उनके काव्यों के बारे में विस्तार से बताया है। यह तुलनात्मक अध्ययन कबीर, रैदास, जायसी जैसे महान निर्गुण संत कवियों के साथ ललद्यद, रूपभवानी, नन्दू ऋषि, महजूर, जैसे वहाँ के संत कवियों की रचनाओं एवं ईश्वर के प्रति उनकी मान्यताओं के साथ किया है जो अत्यंत ही रोचक, ज्ञानवर्धक एवं सारगर्भित है। इन कश्मीरी कवियों की ठेठ कश्मीरी भाषा में कविताओं का उल्लेख करने के साथ ही हिंदी भाषी भारतीय पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए उसका हिंदी अनुवाद भी दिया गया है। इसके अलावा कश्मीरी गीतिकाव्य परंपरा का भी परिचय लेखिका ने इस पुस्तक में दिया है। इस परंपरा ने अपने सुदीर्घ इतिहास में किस तरह के उतार-चढ़ाव देखे, किस तरह इस कला को संरक्षण मिला आदि तमाम बातों का लेखिका ने जिक्र किया है। इस कड़ी में इस कला से जुड़े तमाम प्रमुख कवियों के योगदान का परिचय संक्षिप्त रूप में पाठकों को दिया गया है। इसके अलावा कश्मीरी लोक साहित्य एवं लोक कथाओं का भी उन्होंने न केवल उल्लेख किया है, बल्कि संक्षेप में उसे दिया भी है। विभिन्न कवियों के काव्यों के कथानकों और उसके मूल विषयवस्तु का भी उल्लेख किया गया है।

चूँकि कश्मीर के लोग भारत के अन्य भाग में रहने वालों से किसी भी मायने में लोक कला में उनसे पीछे नहीं हैं, इस बात को ध्यान में रखते हुए लेखिका ने कश्मीरी लोक गीतों, लोक नृत्य आदि का भी उल्लेख पुस्तक में संक्षिप्त रूप में किया है। इसके अलावा पुस्तक के दूसरे खंड में लेखिका ने वहाँ के समाज में प्रचलित कुछ आख्यायिकाओं और कहानियों को भी दिया है जो अत्यंत ही रोचक एवं मनोहारी है। इन कहानियों को पढ़ने के दौरान कहीं से भी बोझिलता का अनुभव नहीं होता। ये कहानियाँ न केवल मनोरंजक हैं, बल्कि ज्ञानवर्धक भी। जहाँ तक बात भाषा-शैली की है तो वह सहज, सरल और सुबोध्य है, विशेष तौर पर जहाँ भी स्थानीय भाषा का प्रयोग किया गया है, उसका अनुवाद भी साथ-साथ देने का लेखिका का प्रयास निश्चय ही सराहनीय कदम है। कुल मिलाकर यह पुस्तक न केवल पठनीय है, बल्कि ज्ञानवर्धक भी है।

दशरथनंदन-दशानन गाथा

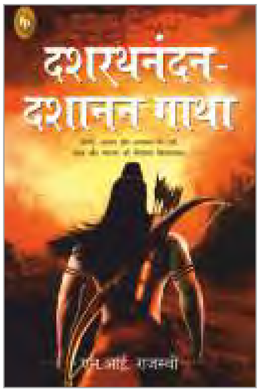

समीक्षक : **एम.ए. समीर**

लेखक : **एम.आई. राजस्वी**

प्रकाशक : फिंगरप्रिंट, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 392

मूल्य : रु. 250/-

'दशरथनंदन-दशानन गाथा' एम.आई. राजस्वी द्वारा लिखा गया एक पौराणिक फिक्शन है। आज-कल पौराणिक फिक्शनों की बाढ़-सी आई हुई है और बड़े-बड़े नामचीन लेखक हिंदी और अंग्रेजी भाषा में पौराणिक फिक्शनों पर कलम चला रहे हैं। इसका मुख्य कारण है कि पाठक इन पौराणिक पात्रों के बारे में पहले ही कुछ-न-कुछ पढ़ या सुन चुके होते हैं। यह सहज-सुलभ मानवीय प्रवृत्ति है कि सुदूर अतीत की जिन मनमोहक घटनाओं और पात्रों का मन के किसी कोने में कोई चित्र अंकित होता है, उसे वह घटना या पात्र अनायास ही आकर्षित करने लगता है। संभवतः इसी कारण ये पुस्तकें अधिक पढ़ी जाती हैं।

दशरथनंदन अर्थात राम और दशानन अर्थात रावण की गाथा से तात्पर्य 'राम-रावण कथा' है और राम-रावण कथा का स्पष्ट अर्थ 'रामायण' होता है, लेकिन इस पुस्तक को 'रामायण' कहना उचित नहीं। ऐसा कहना क्यों उचित नहीं? यह 'दशरथनंदन-दशानन गाथा' का पहला अध्याय 'देवगुरु की दशरथ से प्रार्थना' सामने आते ही स्पष्ट हो जाता है। इस पहले अध्याय का शीर्षक पढ़ते ही मन में प्रश्न उठता है कि देवगुरु अर्थात बृहस्पति देव महाराज दशरथ से प्रार्थना करते हैं या महाराज दशरथ देवगुरु बृहस्पति से प्रार्थना करते हैं? जब तक इस अध्याय का परिचय नहीं पढ़ा जाता, यह असमंजस बना रहता है। इस अध्याय का परिचय पढ़ते ही न केवल सारा असमंजस दूर हो जाता है, बल्कि पुस्तक के इस आगाज से अंजाम तक की दूरंदेशी उत्कंठाएँ प्रबल हो उठती हैं। आप स्वयं इसकी अनुभूति कर सकते हैं—

"हे रघुकुल शिरोमणि!" देवगुरु बृहस्पति ने कहा, "इक्ष्वाकु वंश की कीर्ति सदैव ही सूर्य की भाँति आलोकित हो रही है। धर्म और मानवता की रक्षा व दुष्टों का संहार करने वाले रघुवंशी सदैव प्रतापी और यशस्वी रहे हैं। विधि का विधान विचित्र है और वह जिसे यश-लाभ देना चाहता है, उसे नियुक्त करता है। संबरासुर से देवताओं की पराजय का कारण उसका अतुलनीय पराक्रम नहीं है, अपितु नियति द्वारा इस यश को सम्राट दशरथ को प्रदान करना लिखा है। अतः हे नृपश्रेष्ठ! हम देवों के सहायक बनिए और धर्म की पुनर्स्थापना हेतु अपना प्रचंड धनुष उठाइए। हम आपसे सहायता की प्रार्थना करते हैं और आपके नेतृत्व में असुरदमन यज्ञ संपन्न करना चाहते हैं।"

जब दशरथनंदन राम के अभिषेक की तैयारियाँ हो रही थीं तो रानी कैकेयी दुखी नहीं, बल्कि बहुत प्रसन्न थीं। उन्हें राम, भरत सम प्रिय थे। राम के प्रति दुर्भावना और भरत के प्रति प्रेम की भावना देवताओं की और देवताओं के द्वारा दासी मंथरा के मन की उपज थी। यदि राम का राज्याभिषेक हो जाता तो देवगण दशानन रावण और उसके असुर कुल से व्यथित होते रहते और राम के अवतरण का अर्थ भी अपूर्ण रहता। पुस्तक के 'देवताओं की इच्छा' नामक अध्याय में लेखक ने कैकेयी के द्वारा देवताओं की इच्छा पूरी करने का प्रसंग बड़े ही मनोभाव से प्रस्तुत किया है।

दशरथनंदन राम जहाँ अवतार हैं और सर्वगुण संपन्न हैं, वहीं दशानन रावण सृष्टि का घोरतम अहंकारी होते हुए भी विद्वान पंडित है। उसकी विद्वत्ता और उसका पांडित्य निर्विवाद रूप से उच्च कोटि का है। यद्यपि अहंकार से परिपूर्ण दशानन के वक्तव्य में अभिमान दिखाई पड़ता है, लेकिन पांडित्य की झलक भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। 'दशानन का अहंकारी पांडित्य' नामक अध्याय में इसे अनुभूत किया जा सकता है—

"मूर्ख स्त्री! जब सर्वदाता सामने हो तो मेरे जैसा ज्ञानी पंडित कभी माँगने में त्रुटि नहीं करता।" दशानन अहंकारी पांडित्य के वशीभूत होकर हँसकर बोला, "परंतु जब सबसे ही अभय माँग लेता तो इस भुजबल और रण-कौशल का क्या करता...?"

यद्यपि यह पुस्तक फिक्शन श्रेणी की है, तथापि धार्मिक और आध्यात्मिक आनंद से भरपूर है। इस पुस्तक की अनुभूतियाँ वास्तव में अभिभूत कर देने वाली हैं।

समीक्षक : **लक्ष्मी नारायण मित्तल**

लेखक : **अरूण अर्णव खरे**

प्रकाशक : इंडिया नेट बुक्स, नोएडा।

पृष्ठ : 130

मूल्य : रु. 200/-

उफ्फ! ये एप के झमेले

सोशल मीडिया की चर्चा आज हर जगह है। स्कूल-कॉलेज में पढ़ने वाले किशोर व युवा छात्र-छात्राओं से लेकर मध्यम-वय के कामकाजी प्रोफेशनल्स और घरेलू-गृहणियों तक तथा दफ्तरों, स्कूल-कॉलेज-विश्वविद्यालय की कैंटीनों में सोशल मीडिया की लोकप्रियता अब दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। इस पुस्तक में तो अब वृद्धों द्वारा भी एप के विभिन्न प्रयोगों के उदाहरण दिए गए हैं। लेखक मूलतः मुख्य अभियंता रहे हैं। तो हो सकता है उन्होंने विभिन्न एप और सोशल मीडिया के प्रयोग व उपयोग सरकारी दफ्तरों और कारखानों में भी देखे होंगे। इसके अलावा राजधानियों और बड़े शहरों में आज ऐसे साहित्य के पाठक बन गए हैं जो कॉन्वेंट एजुकेटेड हैं और तकनीकी ज्ञान से भरपूर हैं। यह पाठक वर्ग विश्व को संकुचित करके अपने आँगन में देखता है यानी पूरी तरह से ग्लोबल है। ऐसे पाठकों की चिंताएँ और सरोकार अलग तरीके के हैं।

पुस्तक में कुल 45 व्यंग्य हैं। संग्रह में शामिल रचनाओं को पढ़ते हुए पाठक बोरियत न महसूस करे, इसी से व्यंग्य के विभिन्न टूल्स और कथन की विभिन्न शैलियाँ अपनाई गई हैं। कुछ लेख कथा-शैली में हैं, पर कुछ लेख निबंध-शैली में भी लिखे गए हैं। 'गरीबी बड़े काम की चीज' व्यंग्य में आज के राजनेताओं की कलई खोली गई है और व्यंग्य के माध्यम से गरीबों की त्रासदी बतलाई गई है कि गरीब ही देश के सबसे सभ्य और सहनशील नागरिक होते हैं। इसी लेख में बतलाया गया है कि भारत तो वैश्विक भुखमरी सूचकांक में अपने पड़ोसी पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल और श्रीलंका से भी नीचे है। 'एक कवि की प्याज डायरी' में प्याज के बढ़ते दामों को लेकर जैसा रेखाचित्र खींचा गया है, उससे वास्तव में आँखों में (प्याज के कारण)

आँसू आ जाते हैं। 'अजब मुहावरे, गजब मुहावरे' में भाषाविदों से मुहावरों के कथ्य पर प्रश्न चिह्न लगाए गए हैं। लेखक ने व्यंग्य में कहा है कि अनेक मुहावरों का पुनर्लेखन होना चाहिए। ब्रह्म लोक की आउट सोर्सिंग में आज देश में प्रशासन में जो आउट सोर्सिंग हो रही है, उसके नकारेपन को लेकर कथा के माध्यम से व्यंग्य खड़ा किया गया है।

आज की महँगाई को लेकर गृहिणी का जो प्रतिदिन बढ़ते दामों के कारण बजट गड़बड़ा जाता है, उसका व्यंग्य 'ऑनलाइन और ऑफलाइन के दरम्यान' में वर्णित है। दूध के दाम से लेकर पेट्रोल के बढ़ते दाम दम नहीं ले रहे हैं।

विभिन्न एप्स और विशेषकर व्हाट्सअप के चक्कर में गृहिणी कैसे अपनी दिनचर्या प्रभावित कर रही हैं, इसका चित्रण अनेक व्यंग्यों में स्पष्ट झलकता है।

कोरोना के कारण निठल्ले कवियों के व्हाट्सअप गोष्ठी का वाकया 'कोरोना गोष्ठी वाया व्हाट्सअप' में बखूबी दर्शाया गया है। 'उफ्फ! ये एप के झमेले' में दादाजी कैसे व्हाट्सअप एप के कारण गफलत में पड़ जाते हैं, इसका व्यंग्यात्मक सजीव चित्र इसमें दर्शाया गया है। सोसाइटी में गेट पर प्रवेश के लिए एक एप, स्कूल बस के लिए दूसरा एप, यात्रा-टिकट खरीदने के लिए अलग एप, प्लंबर को बुलाने के लिए अलग से एप यानी स्मार्टफोन में एप-ही-एप अर्थात कोई ऐसा काम नहीं जिसके लिए अलग से एप न हो। इस एप्स के कारण निजता किस प्रकार भंग हो रही है और सामाजिक संवाद और समुदाय-समाज में परस्परता कैसे समाप्त होती जा रही है, इसका एहसास इन व्यंग्यों को पढ़ने से मिलता है। भारतीय जीवन सहजता में, सामुदायिकता में जीने का है, एकाकीपन और निजता में नहीं।

इन सभी निबंधों में विट और आयरनी का भरपूर प्रयोग किया गया है। भाषा सरल और पठनीय है ताकि साधारण समझ रखने वाला पाठक भी इन व्यंग्यों से अपने निजी जीवन को जोड़ सके।

हिंदी में व्यंग्य लेखन अभी अपनी शैशवावस्था में है। इसी से इस पुस्तक का महत्व बढ़ जाता है। इस संकलन की अधिकांश रचनाओं का ताना-बाना मुरारीजी के इर्द-गिर्द रचा गया है जो पाठक को दफ्तरों के चक्कर लगवाएँगे, फेसबुक की ब्लैकमेलिंग से साक्षात्कार करवाएँगे, जुबान रिपेयर सेंटर ले जाएँगे, नेताओं के मुखौटों वाले रोड शो से परिचित करवाएँगे। इन व्यंग्यों द्वारा आज हम वैश्विक समाज की बेशर्मी से परिचित होते हैं जिसका व्यापक प्रभाव आज भारतीय समाज में भी देखने को मिलता है।

सभी रचनाओं का कथ्य व्यंग्य के अनुकूल है और भाषा की दुरूहता से इसे कष्टकर नहीं बनाया गया है। आज समाज की आम समस्या, महँगाई, नेताओं का नंगापन, महिलाओं का इमोशनल ब्लैकमेल, बाजारवाद, पुलिस की संवेदनहीनता, धारा 376 हटाने से उत्पन्न स्थिति, संपादकों का कपट-दल आदि इन लेखों में झलकता है।

लेखक परसाई और जोशी के मार्ग पर प्रशस्त्र होकर चला है, इसी से उन्हें बधाई। पाठक वर्ग को पुस्तक उपयोगी लगेगी और दिल को छूकर सोचने को भी विवश करेगी।

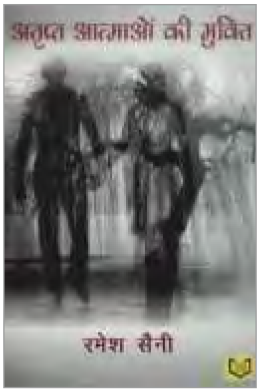

समीक्षक : **डॉ. रमेश तिवारी**

लेखक : **रमेश सैनी**

प्रकाशक : इंडिया नेट बुक्स, नोएडा।

पृष्ठ : 124

मूल्य : रु. 200/-

अतृप्त आत्माओं की मुक्ति

हमारे समय के वरिष्ठ व्यंग्यकार रमेश सैनीजी का अद्यतन व्यंग्य-संग्रह 'अतृप्त आत्माओं की मुक्ति' को पिछले दिनों पढ़ने का सुअवसर मिला। सैनीजी काफी समय से व्यंग्य के सजग लेखक हैं। जब भी वह सामाजिक मूल्यों, जीवन-व्यवहारों में हो रही अव्यवस्थाओं अथवा विसंगतियों को देखते हैं, उसके बरक्स अपनी कलम उठाते हैं। जीवन और लेखन में साम्य को इन्होंने काफी हद तक साधने की कोशिश की है। इस संग्रह में कुल 32 रचनाएँ संकलित हैं। एक उल्लेखनीय रचना है—'इंडिया गॉट टैलेंट'। इस रचना के द्वारा समाज की विभिन्न विसंगतियों को लेखक पाठकों के सामने रखना चाहता है। हरि अनंत... की तरह टैलेंट कथाएँ भी अनंत है। प्रेम करने वालों ने भी समय-समय पर अपना टैलेंट जाहिर किया है। अभी कुछ दिन पहले एक युवक शादी के बाद हनीमून से लौटा और दूसरे दिन अपने से दूनी उम्र की महिला के साथ भाग गया। है न कमाल की बात? परिवार और पुलिस, दोनों परेशान होकर उनको ढूँढ़ रहे हैं। मामला हाई लेवल है, अतः पुलिस रुचि और संलग्नता के साथ यह पुनीत काम कर रही है। उनके सामने सबसे बड़ा मसला यह है कि पहले अंडा हुआ कि मुर्गी। मतलब लड़का महिला को लेकर भागा या महिला लड़के को लेकर। दोनों खुश हैं, पुलिस और घर वाले परेशान। इस रचना की आखिरी पंक्ति में रचनाकार लिखता है 'टैलेंट का स्वभाव होता है कि वह समय पर अपना रूप प्रदर्शित करता है। अतः इंतजार की जरूरत बनी रहती है।' हमारे समाज में व्याप्त विसंगतियों को लेखक ने एक टैलेंट के रूप में चिह्नित कर व्यंग्य-प्रहार किया है।

इस संग्रह की रचनाओं में लेखक कई जगह स्वयं को भी व्यंग्य का विषय बनाने में संकोच नहीं करते। 'क्रेडिट कार्ड' रचना में एक लड़की लेखक को क्रेडिट कार्ड बनवाने का प्रस्ताव देने के लिए फोन करती है, "सर! आपका रिकॉर्ड अच्छा है।" यह सुन मैं चौक गया।

आज तक किसी ने नहीं कहा कि तुम्हारा रिकॉर्ड अच्छा है। स्कूल में मासाब कहते अपना रिकॉर्ड सुधारो, पढ़ाई में ध्यान दो वरना फेल हो जाओगे। हमारे रिकॉर्ड के कारण मासाब, हमारे पिताजी से मिलने की इच्छा करते। पहली बार गणित के मासाब ने कहा कि 'कल पिताजी को लेकर आना। हमारे स्कूल में हमारे रिकॉर्ड को देखकर सभी मासाबों की पिताजी से मिलने की इच्छा होती।' अपने रिकॉर्ड के बेहतर होने की बात सुनकर लेखक को अपने बचपन का शैक्षिक रिकॉर्ड स्वतः याद आने लगता है। वह बिना किसी लाग-लपेट के सब-कुछ पाठकों से साझा करता जाता है। वह लिखता है—"हम अपने गोल्डन ऐरा से बाहर आए और अन्विता की आवाज सुनने लगे—सर आप कहाँ चले गए थे?"

ओह! भूल गया, पुरानी यादों में चला गया। अन्विता ने कहा—"सर! आपका रिकॉर्ड अच्छा है।"

इस प्रकार के सहज संवादों और प्रसंगों के बहाने एक तरफ तो हमारे समाज में व्यावसायिकता के बढ़ते दायरे के कारण ग्राहकों को मूर्ख बनाकर फँसाने की विसंगति पर व्यंग्य-प्रहार किया गया है।

इस संग्रह की शीर्षक रचना है—'अतृप्त आत्माओं की मुक्ति'। इस रचना में भारतीय संस्कृति में देह और आत्मा संबंधी हमारी मान्यताओं पर लेखक ने व्यंग्य किया है। साहित्य-जगत में व्याप्त पुरस्कार लोलुपता, पुरस्कार हथियाने के लिए किए जाने वाले तमाम धत्कर्मों और राजनीतिक दाँव-पेंच को लेखक ने भली-भाँति उद्घाटित कर दिया है। चतुर नेता लेखक को सम्मान दिलाने के लिए तुरंत योजना बनाकर उससे ही तीन लाख रुपये ऐंठने के चक्कर में है। लेखक के अचकचाने पर तुरंत सारा हिसाब भी समझा देता है। "आप चिंता न करें। आपका नुकसान नहीं होगा। ढाई लाख रुपये पुरस्कार राशि के रूप में वापस हो जाएँगे। शेष पचास हजार रुपये, भोजन-पानी की व्यवस्था में खर्च हो जाएँगे। खाने वाले भी आपके सगे-संबंधी, मित्र, हितैषी होंगे। आपका नाम होगा, मान-सम्मान होगा। आपके नाम एक उपलब्धि जुड़ जाएगी।" ऐसे अनेक विद्रूप ही लेखक की व्यंग्य रचनाओं की आधारभूमि हैं।

अन्य प्रमुख रचनाओं में 'आदमी आधार कार्ड बन गया', 'एक महान लेखक का जन्म', 'तटस्थ', 'दारूबंदी के साइड इफेक्ट्स', 'सोशल मीडिया के रजवाड़े', 'कुत्ता तू महान है', 'यह रहा तुम्हारा लोकतंत्र ठूँठा लोकतंत्र' आदि विशेष रूप से पठनीय हैं।

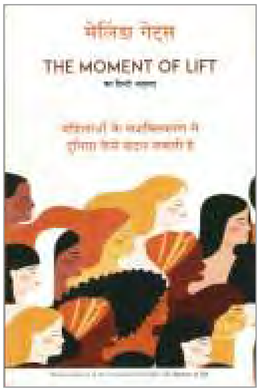

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखिका : **मेलिंडा गेट्स**

अनुवादक : **यामिनी रामपल्लीवार**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 268

मूल्य : रु. 350/-

महिलाओं के सशक्तीकरण से दुनिया कैसे बदल सकती है

मेलिंडा गेट्स की पुस्तक 'द मोमेंट लिफ्ट' का हिंदी में अनूदित नाम है—'महिलाओं के सशक्तीकरण से दुनिया कैसे बदल सकती है।' 'माइक्रोसॉफ्ट' के संस्थापक बिल गेट्स की पत्नी मेलिंडा गेट्स 'बिल एंड मेलिंडा गेट्स फाउंडेशन' की सह अध्यक्ष के रूप में दुनिया के सबसे बड़े परोपकारी संस्थान की दिशा और प्राथमिकताएँ निर्धारित करती हैं। उनके द्वारा लिखित इस पुस्तक में नौ अध्यायों के अतिरिक्त भूमिका, उपसंहार एवं आभार भी शामिल है। आमतौर पर वैभव महिलाओं को विलासितापूर्ण जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है, पर मेलिंडा गेट्स ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से साबित कर दिया है कि सारी महिलाएँ एक जैसी नहीं होती हैं। समाज सेवा के कार्यों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए मेलिंडा ने कंपनी छोड़ने से पहले अपने करिअर का पहला दशक 'माइक्रोसॉफ्ट' में मल्टी-मीडिया उत्पादों को विकसित करने में बिताया। तीन बच्चों की माँ मेलिंडा ने नारी जीवन को उत्कृष्ट बनाने में अपनी अहम भूमिका अदा की है। उनका यह प्रयास निरंतर जारी है।

मेलिंडा का मानना है कि वह एक उत्साही नारीवादी महिला हैं, इसलिए वह चाहती हैं कि हर नारीवादी महिला खुलकर अपने विचार व्यक्त करे। अपने सामर्थ्य का भरपूर सदुपयोग करे। बाधाओं को दूर करने के लिए स्त्री और पुरुष दोनों को मिलकर काम करना चाहिए। उन पक्षपातों को समाप्त करना चाहिए, जिनसे स्त्री अभी भी जकड़ी हुई है।

मेलिंडा इस बात से काफी दुखी थीं कि विमान दुर्घटना में तीन सौ लोगों के मारे जाने पर अखबार में प्रमुखता से लिखा जाता है, पर गरीब देशों में हर रोज तीस हजार बच्चे भूख, कुपोषण से मर जाते हैं, पर किसी अखबार के समाचार नहीं बनते। मौत दुखद समाचार है, पर इतना बड़ा भेदभाव, इसलिए उन्होंने वैश्विक स्वास्थ्य कार्यक्रम का आरंभ किया और पहला बड़ा निवेश पोलियो से मुक्ति हेतु उसके टीकों के लिए किया। उनका कहना है कि बच्चे पैदा करने का अधिकार स्त्रियों के पास होना चाहिए। लड़कियों को अधिकार मिलना चाहिए कि वे किस उम्र में शादी करें। हर क्षेत्र में पुरुषों के बराबर स्त्रियों को भी अधिकार मिलना चाहिए। जब स्त्रियाँ समृद्ध बनेंगी, तो हमारा परिवार और समाज भी समृद्ध बनेगा।

अनेक गरीब देशों में भ्रमण करने के दौरान, जिसमें भारत भी शामिल है, मेलिंडा ने देखा कि माताओं और शिशुओं का स्वास्थ्य गिरा हुआ है। पर भारत 2011 में अधिकांश विशेषज्ञों की भविष्यवाणियों को धता बताते हुए पोलियो मुक्त हो गया। बिहार के देहाती इलाके में ईंट के एक भट्ठे पर काम कर रही प्रवासी महिला ने जब बिल गेट्स और मेलिंडा को 'टीकाकरण कार्ड' दिखाया तो वे हैरान हो गए कि भारत में इतने बड़े पैमाने पर निपुणता के साथ त्वरित गति से पोलियो निवारण का काम हुआ है। वास्तव में भारत के साथ-साथ अन्य देशों को पोलियो मुक्त कराने का बहुत बड़ा श्रेय बिल गेट्स एवं मेलिंडा को ही जाता है।

विश्व के गरीब देशों में स्त्रियों के स्वास्थ्य, श्रम, परिवार नियोजन, बाल विवाह उन्मूलन, कृषि क्षेत्र में स्त्रियों की भागीदारी, कार्यस्थल पर सम्मानपूर्ण समानता को लेकर मेलिंडा ने बड़े स्तर पर काम किया है। मेलिंडा का मानना है कि समझ एवं संबंध के बिना समानता अपना असर खो देती है।

पुस्तक के अंत में मेलिंडा उन लोगों को आभार व्यक्त करना नहीं भूलतीं जिन्होंने समाज सेवा हेतु उन्हें विश्व भ्रमण में सहायता की। उन स्त्रियों से मिलवाया जिन्होंने उन्हें जीवन के सच से अवगत कराया। पुस्तक लिखने के लिए प्रोत्साहित किया। अपने परिवार को भी जिसने उन्हें प्रेम एवं मूल्यों के लिए प्रेरित किया, अपने माता-पिता को भी जिन्होंने उन्हें बचपन से ही प्रेम के गहरे मूल्यों से ओत-प्रोत रखा। समग्रता में यह पुस्तक मेलिंडा गेट्स के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का अनुपम संग्रह है।

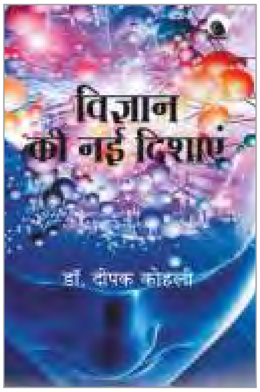

समीक्षक : **डॉ. योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण'**

लेखक : **डॉ. दीपक कोहली**

प्रकाशक : रश्मि प्रकाशन, लखनऊ।

पृष्ठ : 272

मूल्य : रु. 550/-

विज्ञान की नई दिशाएँ

आज देश में विज्ञान से जुड़े विषयों पर हिंदी में लिखने वाले बहुत विरल हैं। ऐसे में जब मुझे डॉ. दीपक कोहली की पुस्तक 'विज्ञान की नई दिशाएँ' पढ़ने को मिली तो सहज ही प्रसन्नता हुई है। डॉ. दीपक कोहली ने अपनी इस पुस्तक में कुल 61 आलेखों में वनस्पति, जल, बागवानी, भौतिकी, रसायन शास्त्र, समुद्री विज्ञान और घरेलू जीवन से संबद्ध भूली-बिसरी बातों को बड़े ही सहज ढंग से समझाया है।

हम सुनते हैं कि आज दफ्तरों, कॉलेजों, स्कूलों आदि में उपस्थिति 'बायोमेट्रिक्स' मशीन से लगाई जाती है, लेकिन यह 'बायोमेट्रिक्स' है क्या? इसे समझाने के लिए 'बायोमेट्रिक्स के बढ़ते कदम' आलेख पढ़िए। आज बिजली जाते ही घरों में अँधेरा छा जाता है, इन्वर्टर न हो तो मोमबत्ती या दिया ढूँढ़ते हैं, ऐसे में 'ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत' आलेख महत्वपूर्ण बन गया है।

आज युवाओं में 'ई सिगरेट' का फैशन चल पड़ा है, लेकिन इसके दुष्प्रभाव तो डॉ. कोहली के आलेख 'ई सिगरेट : सेहत के लिए हानिकारक' पढ़कर ही पता चल सकते हैं। आज सौर ऊर्जा की बात जोरों पर है, किंतु डॉ. दीपक कोहली का आलेख 'सौर ऊर्जा का उपयोग विभिन्न रूपों में' पढ़कर सामान्य पाठक भी प्रकृति की इस देन के महत्व को जान लेता है। लेखक की सरल शैली देखिए—"हमारे सौरमंडल में प्रकाश और उष्णता के दृष्टिकोण से सूर्य का प्रमुख स्थान है। यह ऊर्जा का प्रधान स्रोत है। यद्यपि ब्रह्मांड में स्थित तारों, आकाशीय पिंडों तथा स्वयं पृथ्वी से ऊर्जा या ऊष्मा की प्राप्ति होती है, किंतु यह ऊर्जा सूर्य से प्राप्त की गई ऊर्जा ही होती है।"

वर्तमान में 'नैनो टेक्नोलॉजी' की बड़ी चर्चा हो रही है, ऐसे में डॉ. दीपक कोहली की इस पुस्तक का यह आलेख 'नैनो टेक्नोलॉजी से जल प्रदूषण नियंत्रण' हम सबके लिए बहुत उपयोगी हो सकता है, क्योंकि जल को लेकर आज जितनी चिंताएँ देश में हैं, उनके निराकरण में यह आलेख महत्वपूर्ण जानकारियाँ देता है।

'कीटनाशकों से भोजन में बढ़ता जहर' नामक आलेख तो आँखें खोलने वाला है। मुझे तो सबसे ज्यादा प्रसन्नता 'मसालों का विज्ञान' आलेख पढ़कर हुई है। डॉ. कोहली लिखते हैं—"हमारी रसोई के ये मसाले रसोई के वे रत्न हैं, जिनके बगैर अच्छे से अच्छा रसोइया बेकार है। संपूर्ण भोजन इन्हीं मसालों के संयोजन और मात्रा पर निर्भर होता है कि वह न केवल स्वादिष्ट बने, बल्कि वह स्वाथ्यवर्धक भी हो। इतिहास गवाह है कि मसालों की दुनिया कितनी पुरानी है, कहते हैं कि ईसा के जन्म से बहुत पहले की बात है, कई ग्रीक व्यापारी मसाले और अन्य कीमती चीजें खरीदने के लिए दक्षिण भारत के बाजारों में आया करते थे।"

इसी क्रम में 'इलायची : मसालों की रानी' और 'कृष्णकली (लौंग) की कहानी' और 'पान की खेती और महत्व' जैसे आलेख बेहद रोचक और ज्ञानवर्धक हैं। चूँकि डॉ. दीपक वनस्पति विज्ञान के अध्येता रहे हैं, अतः इस पुस्तक में बहुतायत पारिजात, सदाबहार, पलाश आदि फूलों और आँवला, बेल जैसे फलों पर आलेख हैं।

'भारत में पर्यावरणीय पर्यटन' आलेख खुद में नई दिशाएँ खोलने वाला है, तो 'अपशिष्ट प्रबंधन' आज के महानगरों और नगरों की ज्वलंत समस्या के समाधान का मार्ग बताने वाला आलेख है। 'गिरता भू-जल स्तर और रिचार्ज' आज के संदर्भ में बहुत प्रभावी आलेख है।

समग्र रूप से यह पुस्तक अत्यंत महत्वपूर्ण, उपयोगी और सभी के लिए पठनीय है।

लहरों में जहर

समीक्षक : **कमल किशोर गोयनका**

लेखक : **पंकज चतुर्वेदी**

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर।

पृष्ठ : 94

मूल्य : रु. 10/-

पंकज चतुर्वेदी की नई पुस्तक 'लहरों में जहर' मेरे सामने है और मैं उस पढ़ गया हूँ। मैं उन्हें वर्षों से पढ़ रहा हूँ और उनके अनेक लेख मैंने पढ़े हैं। इससे मैं उन्हें पर्यावरणविद मानता हूँ जो भारत में प्रकृति के प्राप्त जीवन की रक्षा करना चाहते हैं, जो प्रकृति के पंचभूत तत्वों को उनके मूल रूप में, जैसा प्रकृति ने उन्हें रचा है, जीवन के लिए आवश्यक मानते हुए, बचाना चाहते हैं। यह आज का सबसे बड़ा मानवीय धर्म है, क्योंकि भारत में जल, वायु, मिट्टी, अग्नि तथा आकाश आदि को प्रदूषण से बचाने का प्रभाव संपूर्ण सृष्टि पर पड़ेगा। हमारी पृथ्वी करोड़ों वर्षों से एक नियम से चल रही है, कभी-कभी उथल-पुथल भी होती रही है, पर उसके कारण उसके अंदर से ही पैदा होते हैं, लेकिन आज जो प्रकृति में नैसर्गिक रूप का विध्वंस हो रहा है, वह आदमी खुद ही कर रहा है और यह जानते हुए भी कि वह आत्महत्या ही नहीं कर रहा है, बल्कि वह प्रकृति के चेहरे को भी विकृत कर रहा है। वह यह नहीं जानता कि यदि प्रकृति का रूप बदला तो उसका पूर्व रूप में लौटना असंभव हो सकता है।

यह पुस्तक एक गंभीर समस्या की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती है कि हमारी नदियाँ विषाक्त हो रही हैं, उनका जल जहरीला होता जा रहा है और इस कारण सदानीरा नदियाँ जहरीले पानी में कूड़ा ढोने का मार्ग बनती जा रही हैं। पुस्तक की भूमिका में लेखक की चिंता और उसका मनोभाव एवं उसकी देश की जनता और सरकार को दी गई चेतावनी का मर्म समझा जा सकता है। इस दृष्टि से यह भूमिका महत्वपूर्ण है, यह समझने के लिए कि देश की 445 नदियों का जल पीने के योग्य नहीं है। लेखक ने लिखा है कि देश की 14 प्रमुख नदियों में देश का 85 प्रतिशत पानी प्रवाहित होता है और सात करोड़ 30 लाख मानव दिवसों की हानि होती है और उनकी सफाई में हजारों करोड़ खर्च होते हैं, फिर भी प्रदूषण खत्म नहीं होता। ये नदियाँ शहरों के करोड़ों लीटर जल-मल तथा कारखानों से निकले जहर को ढोने वाले नालों में बदलती जा रही हैं। नदियों में शव को प्रवाहित करना, सभी प्रकार के अपशिष्ट को फेंकना तथा उनकी दिशाओं को बदलने से हमारी संस्कृति तथा अस्तित्व एवं विकास के शाश्वत केंद्र की समृद्ध परंपरा ही छिन्न-भिन्न हो जाएगी और धरती पर जीवन का अस्तित्व ही संकट में आ जाएगा।

इस पुस्तक की एक और खूबी है और वह यह है कि 94 पृष्ठों की पुस्तक की कीमत केवल 10 रुपये है। यह चमत्कार बोधि प्रकाशन, जयपुर ने किया है और वह ऐसी ही 10 किताबों का सेट 100 रुपये में 2011 से प्रकाशित करता आ रहा है। यह एक अनुपम प्रयोग है और सही मायने में पुस्तक संस्कृति के प्रचार-प्रसार की अनोखी और ईमानदार पहल है। यह एक प्रकार से 100 रुपये में 10 पुस्तकें प्रकाशक-लेखक की ओर से मूल्यवान भेंट है, जो हिंदी को लोकप्रिय तो बनाती ही है, यह पाठक में पुस्तकों के प्रति रुचि विकसित करती है और उसके ज्ञान को भी बढ़ाती है। मेरे विचार में पंकज चतुर्वेदी की इस पुस्तक का तथा प्रकाशक-लेखक की इस लोकहितकारी योजना का सर्वत्र स्वागत होना चाहिए।

आरंभिक भारतीय

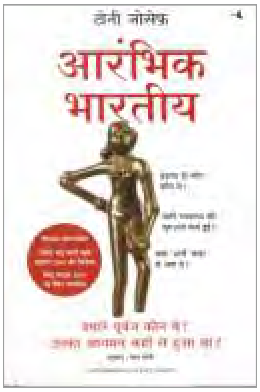

समीक्षक : **रमेश कुमार सिंह**

लेखक : **टोनी जोसेफ़**

अनुवादक : **मदन सोनी**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 210

मूल्य : रु. 350/-

लेखक और पत्रकार टोनी जोसेफ़ ने अपनी पुस्तक 'आरंभिक भारतीय' में भारत के इतिहास के कुछ असहज और विवादास्पद प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने के प्रयत्न किए हैं, जैसे—'हड़प्पा सभ्यता के लोग कौन थे?', 'देश में जाति प्रथा की शुरुआत कब हुई?', 'क्या आर्य यहाँ बाहर से आए थे?' आदि। लेखक ने इन पर होने वाले विवादों को विज्ञान-सम्मत निष्कर्ष से सुलझाने की कोशिश की है। यह टोनी की 2018 में प्रकाशित बहुचर्चित अंग्रेजी पुस्तक 'अर्ली इंडियंस' का हिंदी अनुवाद है।

'आरंभिक भारतीय' पुस्तक भारतीय उपमहाद्वीप के प्रागैतिहास (प्रीहिस्ट्री) के बारे में है। लेखन कला की शुरुआत से पहले के इतिहास को प्रागैतिहास कहते हैं। हड़प्पा सभ्यता की लिपि अभी पढ़ी नहीं जा सकी है, इसलिए उस काल को भी प्रागैतिहास के अंतर्गत ही माना जाता है। 'प्रागैतिहास' के बारे में हमें पुरातात्त्विक वस्तुओं और जीवाश्मों से जानकारी मिलती है। किंतु अब प्रागैतिहास की जानकारी का एक और विश्वसनीय स्रोत उस समय के मनुष्यों के अवशेष के डीएनए का अध्ययन हो गया है। प्राचीन डीएनए के अध्ययन में पिछले कुछ सालों में तेजी आई है। इससे प्रागैतिहासिक मनुष्यों के स्थानांतरण और बसावट की बहुत-सी बातें अब पहले से अधिक साफ हो गई हैं। इस पुस्तक के निष्कर्षों का मुख्य आधार प्राचीन डीएनए साक्ष्य ही हैं।

पुस्तक में अपने पूर्वजों की कहानी पढ़ते हुए रोमांच होता है। हजारों साल पहले के हमारे पुरखे कौन थे, वे कहाँ से आए, कहाँ-कहाँ बसे, कैसा जीवन जिया, ऐसी जानकारियाँ भला किसे रोमांचित नहीं करेंगी? बहुत से लोगों का विश्वास है कि हमारे पूर्वज बाहर से नहीं आए, बल्कि वे आरंभ से यहीं के निवासी थे। किंतु लेखक के अनुसार, आनुवंशिकी विज्ञान के कारण उनके यहाँ आप्रवासन के प्रमाण अब मिल गए हैं और उसका काल निर्धारण भी हो गया है इसलिए सदैव से निवास जैसी कोई अवधारणा संगत नहीं रह गई है। आनुवंशिकी साक्ष्यों के अनुसार, आधुनिक मानव (होमो सेपियंस) का पहला समूह लगभग 65000 साल पहले अफ्रीका से भारत आया था। 7000 से 3000 साल ईसा पूर्व ईरानी कृषक समूह भारत आए और यहाँ खेतिहर बस्तियों की शुरुआत हुई। इससे शहरी हड़प्पा सभ्यता (2600 वर्ष ईसा पूर्व से 1900 वर्ष ईसा पूर्व) का आधार तैयार हुआ। यह सभ्यता कई मायनों में अनोखी थी। 2000 से 1000 वर्ष ईसा पूर्व इंडो-यूरोपियन भाषाभाषी (आर्य) मध्य एशिया के स्टेपी क्षेत्र से भारत आए और यहाँ एक समृद्ध संस्कृति का उदय हुआ। क्या हड़प्पा सभ्यता और आर्यों में कोई संबंध था? लेखक के अनुसार, "हड़प्पा सभ्यता का 'आर्यों' या संस्कृत या वेदों से कोई लेना-देना नहीं था, और यह आर्यों से पहले की या वेदों से पहले की सभ्यता थी।"

इसी तरह, लेखक का निष्कर्ष है कि भारत में जाति प्रथा की शुरुआत आर्यों के आगमन के साथ नहीं हुई, बल्कि लगभग दो हजार साल पहले विभिन्न समुदायों में मिश्रण बंद होने और इंडोगेमी (अपने ही समुदाय के भीतर विवाह-संबंध) की शुरुआत के कारण हुई।

विभिन्न आबादियों का उद्‌गम, उनका भारत में आगमन और परस्पर मिश्रण धार्मिक और राजनीतिक विवादों का विषय रहा है। आज आनुवंशिकी विशेषज्ञ जीन-कुंडली पढ़कर हमारे ज्ञात-अज्ञात अतीत के रहस्यों के परदे उठा रहे हैं, लेकिन इनके निष्कर्षों को आखिरी मान लेना अथवा इनसे सबका सहमत होना संभव नहीं। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर के अनुसार, "चूँकि ये आरंभिक अध्ययन हैं, इसलिए इन डीएनए पहचानों को दूसरे स्रोतों से हासिल पहचानों का पर्याय बताते समय, इनका पठन एहतियात की माँग करता है।" पुरातत्त्व की तमाम प्रगति के बावजूद प्रागैतिहास के अनगिनत प्रश्न अभी भी अनुत्तरित हैं और हम अंधकार में खो गए अतीत के बहुत छोटे-से हिस्से पर ही रोशनी डाल पाए हैं।

टोनी जोसेफ़ ने इस पुस्तक के लेखन के लिए आनुवंशिकी, भाषाविज्ञान, पुरालेख विज्ञान, भाषा-विकास-विज्ञान, पुरातत्त्व आदि का गहन अध्ययन किया है। उन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप के प्रागैतिहास को विज्ञान की कसौटी पर कसने की कोशिश की है। टोनी के अनुसार, "किसी भी लेखक के लिए एकमात्र तर्कसंगत दृष्टिकोण यह है कि वह तथ्यों को बोलने दे, लेकिन साथ ही यह भी सुनिश्चित करे कि उनसे कोई भी निराधार निष्कर्ष न निकाले जा सकें।"

टोनी की भाषा-शैली रोचक है। डीएनए सीक्वेंसिंग के वर्णन वाले वैज्ञानिक शब्दावली से भरे हिस्से को छोड़कर पुस्तक के बाकी भाग सरस निबंध जैसे लगते हैं। उन्होंने पुस्तक के उप-अध्यायों को रोचक शीर्षक दिए हैं और बहुरंगी भारतीय आबादी की संरचना को पिज़्ज़ा की बनावट से समझाया है। पुस्तक के मानचित्र और चित्र विषय को समझने में सहायक हैं।

लेखक का अंतिम निष्कर्ष यह है कि हम सब (भारतीय) आप्रवासी हैं और हम सब मिश्रित हैं। भारत की आबादी की विविधता की बड़ी वजह यहाँ हजारों वर्षों से विभिन्न समुदायों का आप्रवासन है। अनेकता में एकता इस देश की विशेषता है और इसके प्रागैतिहास में भी इसकी झलक मिलती है।

गुल्ली डंडा

(बाल नाटक)

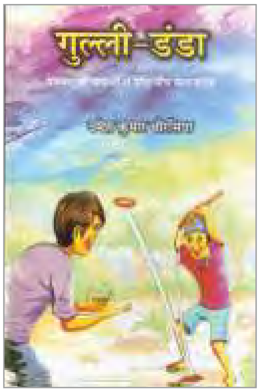

समीक्षक : **प्रमोद भार्गव**

लेखक : **उमेश कुमार चौरासिया**

प्रकाशक : कोऑपरेशन पब्लिकेशन, जयपुर।

पृष्ठ : 120

मूल्य : रु. 200/-

बालमन अथवा मनुष्य की आंतरिक मन:स्थिति को समझना मेरी दृष्टि में सबसे कठिन काम है। अकसर हम मनोविज्ञान को जानने के लिए विदेशी लेखकों की पुस्तकों का सहारा लेते हैं। मेरा ऐसा मानना है कि किसी भी व्यक्ति के मन की स्थिति पर उसमें बचपन में रोप दिए गए संस्कारों का आजीवन असर रहता है। ये संस्कार अवचेतन में संगृहीत रहते हैं। व्यक्ति पर उसके सनातन धर्म, भाषा, भूगोल, इतिहास और संस्कृति का भी प्रभाव रहता है। इसीलिए हम बच्चों के मन का विज्ञान हो या व्यक्ति का, उसे ठीक से अपने दर्शन, साहित्य और चित्त को निरंतर प्रभावित करने वाली स्थानीय परिस्थितियों और दैनंदिन लोकाचार से ही ज्यादा तार्किक ढंग से समझ सकते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में सूरदास की कृष्ण-लीलाएँ गहराई से प्रभावित करती हैं। भारतीय लोक कथाएँ, जातक कथाएँ, पंचतंत्र, हितोपदेश और हिंदी व भारतीय भाषाओं की कहानियाँ भी बालमनों को परिमार्जित व संस्कारित करती हैं। इस नाते लेखक व रंगकर्मी उमेश कुमार चौरसिया की नाट्य रूपांतरित पुस्तक 'गुल्ली-डंडा' अत्यंत महत्वपूर्ण है।

लेखक ने कालजयी कथाकार प्रेमचंद की पाँच लोक प्रसिद्ध कहानियों का नाट्य रूपांतरण कर उन्हें बाल नाटिकाओं के रूप में रचा है। ये कहानियाँ नादानी, गुल्ली-डंडा, घर वापसी, ईद का मेला और बड़े भाईसाहब हैं। इनमें दो मूल कहानियों के शीर्षक बदले हैं।

'दो बैलों की कथा' का शीर्षक 'घर वापसी' और 'ईदगाह' का 'ईद का मेला' नाम से कर दिया है। ये शीर्षक नाटकीय प्रासंगिकता के अनुकूल तो हैं ही, इनके परिवर्तन से कथानक की मूल भावना में बदलाव कतई नहीं आया है। इनकी प्रभावोत्पादकता अपनी जगह कायम रहती है। मंचन से जुड़ी किसी भी विधा की अभिव्यक्ति बच्चे सबसे ज्यादा पसंद करते हैं। इसलिए कठपुतलियों का मंचन हो या फिर एमिनेशन से जुड़ी पारंपरिक कथाएँ, बच्चों को लुभाती हैं। मोगली की 'द जंगल बुक' की लोकप्रियता ने तो अनेक रिकॉर्ड तोड़ दिए थे। बच्चों में जिज्ञासा और सृजन की अद्‌भुत क्षमता अंतर्मन में प्रच्छन्न रहती है। इसलिए हम उनमें संवेदना, भावना, उदारता, सहयोग और आदर्श के बीज नाटकों के जीवंत पात्रों व घटनाओं के माध्यम से कहीं ज्यादा अच्छे ढंग से रोप सकते हैं। ऐसे में यदि प्रेमचंद की कहानियों पर रचे सुरुचिपूर्ण नाटक हों तो कहना ही क्या? क्योंकि प्रेमचंद की यह रचनात्मक विलक्षणता रही है कि वे घटना के साथ व्यक्ति के चरित्र में दर्शन और भावनात्मक सत्य को भी प्रकट करते हैं। यही वह सच्चाई है, जो किसी भी व्यक्ति को निरंतर उद्वेलित करती है, क्योंकि इनके संस्कार बीज अवचेतन में अंतर्निहित रहते हैं। इसलिए इस पुस्तक के नाटक बालमन और बाल रंगमंच को निश्चित ही सार्थकता देने वाले हैं।

'गुल्ली-डंडा' बचपन में गुल्ली-डंडा खेलने वाले दो मित्रों की कथा है। इस कथा में गया नाम का बालक गरीब जरूर है, लेकिन स्फूर्ति और चपलता में अमीर अमित से कहीं बहुत आगे है। गया जब गुल्ली में डंडा मारता है तो बहुत दूर जाकर गिरती है। उसे लाने में अमित थकान का अनुभव करता है। यही अमित इंजीनियर बनने के बाद फिर अपने गाँव लौटता है। गया से मिलने की अमित की तीव्र आकांक्षा होती है, परंतु जब अपने हमउम्र मित्र से मिलता है तो हैरान रह जाता है। काले रंग के शरीर पर असमय प्रौढ़ता छा गई है। वार्तालाप में गया औपचारिक है, क्योंकि अमित उसके मालिक का बेटा रहा है। बावजूद अमित मित्रवत व्यवहार बरतते हुए गया के साथ गुल्ली-डंडा खेलने का अनुरोध करता है। इस खेल में बोले गए संवाद इतने चुटीले और तल्ख हैं कि आर्थिक विषमता का यथार्थ सहज रूप में उजागर हो पड़ता है।

'घर वापसी' नाटक में पशुओं के प्रति बरती जा रही क्रूरता का प्रतिरोध है तो 'ईद का मेला' में दादी और पोते के बीच व्याप्त निश्चल प्रेम है। 'बड़े भाईसाहब' में छोटे भाई के प्रति दायित्व बोध उल्लेखित है, जिसे छोटा भाई अनजाने में द्वेष समझता है। बहरहाल, पाँचों नाटिकाएँ बालसुलभ मनोरंजन के साथ एक ऐसे आदर्श का बोध कराती हैं, जो सामाजिक समरसता और पारिवारिक कर्तव्य का ज्ञान कराती हैं। सभी नाटकों में कलात्मकता और सृजनात्मकता तो है ही, मानवीय मूल्यों से जुड़ा नागरिक बनने का भी संदेश है। लेखक उमेशजी ने इस नाट्य रूपांतरण में यह ध्यान भी रखा है कि कालजयी रचनाधर्मी प्रेमचंद की लेखकीय गरिमा कहीं भी आहत न हो। लेखक की यह समझ उनकी गरिमा को सार्थक नाट्य रूपांतरण में बनाए रखती है।

प्रतिनिधि व्यंग्य

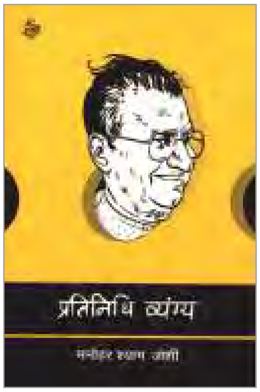

समीक्षक : **पल्लव**

लेखक : **मनोहर श्याम जोशी**

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

पृष्ठ : 140

मूल्य : रु. 60/-

मनोहर श्याम जोशी को हिंदी समाज उनके उपन्यास 'कसप' और उनके लिखे धारावाहिक 'बुनियाद' के कारण जानता है। जोशीजी सच्चे अर्थ में बहुमुखी प्रतिभा थे। कथा साहित्य और फिल्म-टेलीविजन के लिए लेखन के साथ उन्होंने 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' का संपादन भी किया था। उनकी लिखी अनेक किताबें उनके निधन के बाद अब तक प्रकाशित हो रही हैं। ऐसे लेखक के एक और रूप को देखना-जानना सचमुच सुखद है, राजकमल प्रकाशन से आई उनकी पुस्तक 'प्रतिनिधि व्यंग्य' उनके व्यंग्य आलेखों और कथाओं की पुस्तक है। ये आलेख लगभग 20-25 वर्ष पुराने हैं तब भी इन्हें पढ़ना जोशी के व्यंग्य की गहराई को समझना ही नहीं है, अपितु उनकी राजनैतिक-सामाजिक दृष्टि की दूरंदेशिता को भी पहचानना है। एक समय में उनकी व्यंग्य शृंखला 'नेताजी कहिन' पर टीवी धारावाहिक 'कक्काजी कहिन' का प्रसारण हुआ था। इस पुस्तक के प्रारंभिक निबंध 'रहिमन सिट साइलेंटली' तथा अन्य तीन निबंध उसी की याद दिलाते हैं जहाँ तीखा व्यंग्य और व्यवस्था की कुरूपता पर गहरा कटाक्ष है। जोशीजी व्यंग्य उत्पन्न करने के लिए सस्ते लतीफों का सहारा नहीं लेते, अपितु परिस्थितियों की विद्रूपता को उघाड़कर रख देते हैं। इस पुस्तक में उनके कुछ संस्मरणों को भी शामिल किया गया है और कुछ ऐसी रचनाएँ भी हैं जिन्हें 'रेखाचित्र' कहा जा सकता है।

अज्ञेय का लिखा संस्मरण 'एक अपना ही अजनबी' केवल गुदगुदाता नहीं, वरन् अज्ञेय सरीखे बड़े लेखक का सर्वथा भिन्न चित्र पाठकों के समक्ष रख देता है जहाँ न विगलित श्रद्धा है और न परम उपहास। इसी तरह अनेक लेखकों पर केंद्रित शृंखला 'राजधानी के सलीब पर कई मसीहा चेहरे' को पढ़ा जा सकता है जहाँ कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, सत्येंद्र शरत, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, श्रीकांत वर्मा, मुद्राराक्षस, हिमांशु

जोशी, जैनेन्द्र, मन्नू भंडारी, प्रभाकर माचवे, रामकुमार, अमृता प्रीतम और कृष्णा सोबती के अत्यंत मनोरम शब्द चित्र हैं। हिंदी में इस तरह लेखकों पर संभवतः सिर्फ मनोहर श्याम जोशी ने ही लिखा है जो मजे-मजे में बारीक बात कहना भी जानते थे। जोशी ने अपना आत्मचित्र कुछ इन शब्दों में लिख दिया है, 'आप अपने प्रतिमान बहुत ऊँचे बताते हैं और उन ऊँचे प्रतिमानों के अनुसार अपनी अधूरी रचनाओं को घटिया और दूसरों की पूरी रचनाओं को बहुत घटिया बताकर संतोष कर लेते हैं। मनोहर श्याम जोशी वायदे का कोई भी काम आर्थिक या मानसिक लाचारियों के दबाव में ही पूरा करते हैं। आमतौर पर वह अपनी प्रतिभा से अपरिचित और अछूते क्षेत्रों के लिए ही सुरक्षित रखना चाहते हैं जहाँ कोई प्रतिद्वंद्विता न हो।' एक अन्य आलेख 'बेबीलोन की लॉटरी' का यह अंश दृष्टव्य है, 'इन लॉटरियों से जनसाधारण के जीवन में दिवास्वप्न देखने और प्रतीक्षा का आनंद लूटने के दुर्लभ सुखों की प्रतिष्ठा हुई है। इन्हें चलाकर राज्य सरकारों ने हाथ पर हाथ धरे बैठे हुए इस गरीब देश के लोगों के नीरस जीवन में रोचक और रोमांचक रंग छितरा दिए हैं।' इसी तरह क्रांति का पाखंड करने वालों पर उनका अद्भुत व्यंग्य है 'क्रांति क्रांति क्रांति', जहाँ वे शुरुआत में ही कह देते हैं, 'मेरी क्रांतिकारिता मुझे परेशान कर रही थी लिहाजा मैं खड़ा-खड़ा ही क्रांति की ओर दौड़ता रहा। इस दौड़ के लिए मुझे उपयुक्त स्थान साहित्य-संस्कृति के मोर्चे पर मिला जहाँ अपने क्रांतिकारी गर्जन-तर्जन से मैं दसों दिशाओं को गूँजाता रहा।'

कहना न होगा कि उनके इन व्यंग्य आलेखों में कहीं संस्मरणात्मक आस्वाद मिलता है, तो कहीं तीखी राजनीतिक मार, वहीं बदहाल लोगों की दुरावस्था पर क्षोभ भी—इन सब चीजों को मिलाकर जोशीजी गद्य की विविधता का परिचय देते हैं। राजकमल प्रकाशन ने इस पुरोधा के लिखे को फिर प्रकाशित कर सचमुच जरूरी कार्य किया है। संक्षिप्त किंतु बढ़िया भूमिका में भगवती जोशी और

जी श्रीमान! और बारह हास्य एकांकी

समीक्षक : **डॉ. गौरीशंकर रैणा**

लेखक : **शैलेंद्र**

प्रकाशक : सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 270

मूल्य : रु. 350/-

काव्य तथा नाट्यकला के क्षेत्र में हमारी परंपरा समृद्ध है। नाटक, कलात्मक अभिव्यक्ति का एक सुंदर रूप है। कुछ महीनों पहले नाटककार-रूपांतरकार शैलेंद्र का नया नाट्य संकलन आया जिसमें एक लंबा नाटक तथा बारह हास्य एकांकी संगृहीत हैं। पहला नाटक गोगोल के 'गवर्नमेंट इंस्पेक्टर' का, हिंदी भाषा में, रूपांतरण है जिसका सफलतापूर्वक मंचन हुआ है। संकलन में शामिल हास्य एकांकी मंच पर खेले जाने के साथ ही रेडियो से भी प्रसारित हुए हैं।

नाटक में 'शब्द' महत्वपूर्ण होता है। चाहे वह वेशभूषा, दृश्य सज्जा तथा प्रदर्शन के साथ बोला जाए या फिर श्रव्य भाषा के रूप में रेडियो से प्रसारित हो; संप्रेषण के बहुस्तरीय रूपों के मूल में शब्द ही रहता है। शैलेंद्र शब्दों का महत्व समझते हैं और उनका इस्तेमाल भी बखूबी जानते हैं। शुरू के दिनों में जब वे आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र में 'स्क्रिप्ट राइटर' थे तो उन्होंने 'सुनिए और सोचिए' सीरीज़ लिखी थी। इस रेडिया-शृंखला ने उन्हें इतनी प्रसिद्धि दिलाई कि दो वर्षों में ही उन्हें दूरदर्शन के नाटक-विभाग के लिए बुलवाया गया। वहाँ उन्होंने न केवल मौलिक नाटकों का सृजन किया, बल्कि महत्वपूर्ण कृतियों का रूपांतरण भी किया, जिनमें प्रमुख हैं : रवींद्रनाथ ठाकुर के 'समाप्ति' व 'पोस्टमास्टर' तथा धर्मवीर भारती का 'बंद गली का आखिरी मकान'। रूपांतरित नाटकों के नाट्य-आलेख ऐसे होते हैं कि अभिनेता-अभिनेत्रियों के मुख से बोले जाने वाले 'शब्द' प्राथमिकता प्राप्त करते हैं। भाषाई रूप में अभिव्यक्त ये नाट्य-रचनाएँ प्रदर्शन के दौरान संपूर्णता पा जाते, परंतु इनके आलेख आज भी नाटकों को फिर से देखने और पढ़ने को प्रेरित करते हैं। जिस दौर में शैलेंद्र ने टेलीविजन नाटकों के लेखन की शुरुआत की थी, उन दिनों नाटक लाइव प्रसारित होते या 'ब्लैक एंड ह्वाइट-16 एम.एम. फिल्म' पर फिल्माए जाते, क्योंकि वीडियो रिकॉर्डिंग की सुविधा नहीं थी। आज जब उनका एक और नाट्य-संकलन सामने आया है तो हास्यपूर्ण नाटकीय स्थितियों में रोचक चरित्रों के चुटीले-चुस्त संवाद पढ़ने का अवसर फिर से प्राप्त हुआ है।

जिस प्रकार गोगोल ने लिखने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया और व्यंग्य के माध्यम से बुराई को प्रस्तुत करने के साथ-साथ उसके स्रोतों की भी व्याख्या की है, उसी प्रकार इस नाट्य-संकलन के लेखक ने हास्य स्थितियों को प्रस्तुत करते हुए सामान्य-सी लगने वाली घटनाओं के माध्यम से गंभीर व्यवस्थापित व्यवहार में लाई गई संकीर्णता की ओर भी संकेत किया है। संकलन में समाहित नाटकों की एक और विशेषता यह भी है कि घटनाओं और स्थितियों का क्रम ऐसा है कि पात्र रोचक लगते हैं।

नाटककार ने पात्रों की एक विशेष परिकल्पना करते हुए अपने नाटकों में बड़ी आकर्षक स्थितियाँ उत्पन्न की हैं। ये स्थितियाँ अपने अलग स्वरूप के कारण अपने पात्रों द्वारा एक अर्थ संप्रेषित करती हैं। चाहे 'सिर्फ मैं और तुम', 'इलाज', 'मौसम इत्तफाक़ का', मेरी

परेशानी तो देखो', 'छोटा सफर' या 'सूत का कपास' हो ये गुदगुदाते हैं, मनोरंजन करते हैं और साथ में कुछ कह भी जाते हैं। ये एकांकी रेडियो पर भी बड़ी सफलता से प्रसारित हुए हैं, क्योंकि इस माध्यम में एक श्रोता कल्पना द्वारा पात्रों के साथ वैयक्तिक संबंध स्थापित करता है। नाटक मनोभावों के संघर्ष प्रस्तुत करता है तथा शब्दात्मक होने के कारण एक स्वतंत्र विधा के रूप में रूपांतरित होकर प्रसारित होता है। मौलिक नाटकों की रचना के साथ ही शैलेंद्र ने रेडियो तथा टेलीविजन के लिए लगभग अस्सी नाटकों का रूपांतरण किया है। उपन्यासों तथा लंबी कहानियों से रूपांतरित उनके नाटक बेजोड़ हैं। वे अव्वल दर्जे के रूपांतरकार भी रहे हैं।

नाटककार अपनी रचना के माध्यम से एक खोज में जुट जाता है और एक तलाश जारी रखता है। उसके सामने कई चुनौतियाँ होती हैं, मगर वह अपनी कला के माध्यम से कल्पित स्थितियों को जीवन से जोड़ता है। जो सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ होती हैं, वे बदलती रहती हैं, परंतु लेखक अपनी रचनाओं द्वारा पुराने और नए में एक सेतु बनाता है। यह सवाल भी अहम है कि क्या जो उद्देश्य नाटककार का होता है या जो बात वह कहना चाहता है, क्या वह पाठक अथवा दर्शक के पास पहुँचती है? नाटककार के अलावा निर्देशक और अभिनेता-अभिनेत्रियाँ भी होते हैं जो नाटक को उसके तमाम अर्थों के साथ प्रस्तुत करने में मददगार होते हैं और नाटक की प्रस्तुति में ही रचना संपूर्णता पा जाती है। लेकिन पाठक या दर्शक का जो उद्देश्य हो, वही नाटककार का भी हो, हो सकता है या नहीं भी। पाठक-दर्शक यदि केवल मनोरंजन के लिए कृति को पढ़ता-देखता है तो कभी-कभी उसे वह अर्थ खोजने में मुश्किल होती है जो रचना में निहित होता है क्योंकि लेखक हास्य स्थितियों के द्वारा भी कुछ कहता है। इसके मद्देनजर देखें तो शैलेंद्र की सभी नाट्य रचनाएँ दर्शकों और पाठकों को अच्छी लगी हैं।

जीवन की भूमिकाओं का प्रस्तुतिकरण अथवा पुनः प्रस्तुतिकरण करके अपने नाटकों में शैलेंद्र ने लगभग 45 वर्षों से सुनने, देखने और पढ़ने वालों को भावानुभूति का आस्वादन करा के लाभान्वित किया है। इस नई पुस्तक के प्रकाशन के कुछ दिनों बाद ही वे चल बसे, परंतु 'जी श्रीमान!' का उपहार वे हमें देते गए।

माटी-पानी

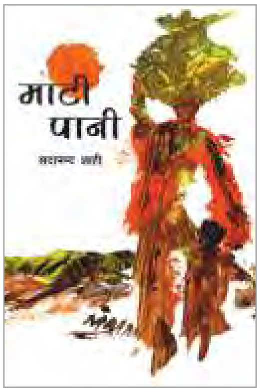

समीक्षक : **अनूपा चौहान**

लेखक : **सदानन्द शाही**

प्रकाशक : लोकायत प्रकाशन, वाराणसी।

पृष्ठ : 144

मूल्य : रु. 125/-

यह अनायास ही नहीं है कि 'सुख को एक बासी चीज' बताने वाले सदानन्द शाही के लिए असीम कुछ भी नहीं है। कबीर का अध्ययन करने वाले शाहीजी मूलतः माटी-पानी के इनसान हैं। दरअसल माटी-पानी को पहचानना अपने देश को पहचानना है, अपने परिवेश को, अपने काल को पहचानना है। माटी-पानी कवि का तीसरा काव्य-संकलन है। इससे पहले उनके दो और काव्य संकलन—'असीम कुछ भी नहीं' (1999) और 'सुख एक बासी चीज है' (2015) प्रकाशित हो चुके हैं। देखा जाए तो इन दो संकलनों के बीच 16 साल का एक लंबा अंतराल है फिर भी कवि की भावभूमि वही बनी रहती है। वे प्रकृति से जुड़ते हैं, भाषा और अक्षर पर बात करते हैं, बच्चों और बूढ़ों को मनुहारते हैं, स्त्रियों और लड़कियों की सराहना करते हैं—उन्हें प्रेरित करते हैं, मिथकीय पात्र उनके यहाँ आकर मुखर हो उठते हैं, जी भरकर प्रेम करते हैं। इन संकलन में केवल कविता के विषय की ही वैविध्यता नहीं है, बल्कि इनकी भाषा भी आकर्षक है। वह कुछ अधिक कोमल, अधिक ऋजु है। भाषा का यह लचीलापन वहाँ भी देखने को मिलता है जहाँ वे समाज के उन प्रश्नों से दो-चार होते हैं जो किसी भी संवेदनशील मनुष्य को विचलित करते हैं।

यह कहना गलत नहीं होगा कि वर्तमान समय अपनी विसंगतताओं में ऐतिहासिक है। समय स्वभावतः परिवर्तनशील होता है। ऐसा शायद ही कोई समय रहा हो जिसमें व्यापक परिवर्तन न हुए हों। आधुनिक काल के लिए कहा गया है कि मूल्यों का हनन जितना आधुनिक काल के उदय के साथ हुआ, उतना इससे पूर्व कभी नहीं हुआ था। आज समस्या मूल्यों का गिरना नहीं है, मूल्यहीनता है।

हम कवि के 'शब्द' को पहचानते हैं, शब्द के स्वयम् को निकालने की बात से लगता है जो लोग अभी भी समाज में मनुष्यत्व की नमीं को पहचानते हैं, किंतु अन्याय के प्रति चुप्पी साध लेते हैं, उन्हें अपना स्थान तय कर लेना चाहिए। समाज के बदलते प्रारूपों के साथ कवि शब्दों के बदलते मुहावरों को दुख के साथ स्वीकार करते हैं। एक ही शीर्षक 'दो परिभाषाएँ' के तहत उनकी दो रचनाएँ 'देशद्रोह' और 'देश-प्रेम' कवि की इस स्वीकृति की मुहर बनी हैं।

पितृसत्तात्मक समाज राष्ट्रवादी सत्ता का पर्याय रहा है जिसके लिए केवल अपना अस्तित्व ही महत्वपूर्ण है। इस सत्ता के सामने कोई चुनौती नहीं है, इसलिए वह निरीह के वजूद को दबोचती है। इन निरीहों में स्त्री सर्वोपरि है। वर्जीनिया वुल्फ ने अपनी महत्वपूर्ण रचना 'अपना एक कमरा' में अपनी स्वतंत्रता के बारे में एक तथ्य को उद्घाटित करते हुए यह स्वीकार किया है कि उनकी स्थिति में अगर कुछ परिवर्तन आया तो वह इसलिए कि उनके पास उनकी आंटी की दी हुई संपत्ति थी। वे मानती थीं कि स्त्री का बटुआ भरा होने पर

उसकी सामाजिक एवं बौद्धिक स्थिति में बदलाव आ सकता है। किसी भी स्त्री के लिए यह आदर्श स्थिति हो सकती है।

कवि की स्त्री संबंधी रचनाएँ हमें मंटों की याद दिलाती हैं जिस प्रकार मंटो ने स्त्री के भीतर की कोमलता और क्रूरता दोनों को पहचाना था। प्रो. शाही भी स्त्री की करुणा और रुक्षता को पहचानने का प्रयास करते हैं। और हमें लगता है कि मंटो से लेकर सदानन्द शाही तक स्त्री की प्रकृति या स्थिति में कोई खास बदलाव नहीं आया है। बाहरी रूप से बदली हुई दुनिया की आंतरिक व्यवस्थाओं पर से आज भी सामंती प्रकृति की धूल झड़ी नहीं है।

इधर पिछले कुछ दशकों में वैश्विक स्तर पर आए बदलावों ने हिंदी कविता को प्रभावित किया है। आधुनिककालीन पूँजीवाद बाजारवाद का नया अभेद्य चोला पहनकर सर्वहारा वर्ग और मध्यवर्ग की आभ्यांतरिक चेतना को निगल रहा है। वहीं साहित्य में विचारधाराओं का अंत भी घोषित हो चुका है। कविता सीधे-सीधे किसी दर्शन या विचारधारा से न जुड़ते हुए स्वायत्त रूप में अपनी बात कहने को बाध्य हुई है। इसने काव्य भाषा पर होने वाली बहस का अंत कर दिया जिससे भाषाई नएपन, उसके गठाव-कसाव की प्रक्रिया प्रायः समाप्त हो गई है। इससे शब्दों की पुनरावृत्ति का खतरा बढ़ा है। अधिकांश हिंदी कवियों ने इस गुत्थी को सुलझाते हुए लोक भाषाओं के शब्दों के प्रयोग को अपना लिया है। यह नहीं कि इससे पहले लोक भाषा के शब्दों का साहित्य में प्रयोग न हुआ हो, नागार्जुन और त्रिलोचन जैसे रचनाकारों में यह देखा जा सकता है। लेकिन लोक भाषा उनकी मजबूरी नहीं थी। आज चूँकि काव्य भाषा संघर्ष के दौर से गुजर रही है, वह अपने अस्तित्व के लिए लोक भाषाओं के पास पहुँची है। आज का कवि जहाँ शब्दों की कमी महसूस करता है, वह लोक भाषा के शब्दों से आपूर्ति कर लेता है। लेकिन सदानन्द शाही के लिए भोजपुरी आंतरिक जरूरत है। कवि का लोक से संबंध स्वयं को भोजपुरिया (मैं बनारसी हूँ) कहलाने में दीखता है। यही कारण है कि वे 'माटी-पानी' काव्य संकलन में भोजपुरी की कुछ रचनाओं को भी शामिल करते हैं।

कवि की यही उम्मीद समाज में मूल्यों को बनाए रखती है, मनुष्य में मनुजता बनाए रखती है। वह बेहतर समाज जीवन की प्रेरणा बनने में कामयाब रहती है। मानव यथार्थ अनेक अंतर्विरोधों से भरा है। इसमें सामान्यीकरण नहीं किया जा सकता। अपने समय के आतंक के बरअक्स कवि का प्रेम में दृढ़ विश्वास, जीवन में भरोसा, अर्थपूर्ण व्यंग्य और अपने परिवेश तथा समय के प्रति समीक्षात्मक दृष्टिकोण रचनाधर्मिता की हर शर्त की आपूर्ति करता है।

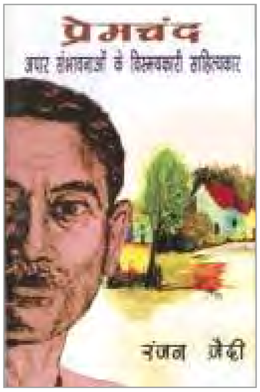

समीक्षक : **जनार्दन मिश्र**

लेखक : **रंजन जैदी**

प्रकाशक : हंस प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 136

मूल्य : रु. 495/-

प्रेमचंद : अपार संभावनाओं के विस्मयकारी साहित्यकार

अनेक कृतियों के प्रणेता डॉ. रंजन जैदी के नवीनतम ग्रंथ 'प्रेमचंद : अपार संभावनाओं के विस्मयकारी साहित्यकार' में प्रेमचंद को नए रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा के दौरान ही तय कर लिया था कि आगे चलकर वे प्रेमचंद के साहित्य पर शोध करेंगे, पर उनके चाहने के बावजूद डॉ. राही मासूम राजा के उपन्यासों पर उन्हें शोध करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। उनके साहित्य पर शोध कर उन्होंने सनद तो जरूर प्राप्त कीं, पर प्रेमचंद उनके मस्तिष्क से निकल नहीं पाए। भारत सरकार की नौकरी से मुक्त होने के पश्चात उन्होंने स्वतंत्रतापूर्वक प्रेमचंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर कार्य किया और उसका परिणाम है यह कृति। इस ग्रंथ में पाठक को ऐसी कोई झलक नहीं मिलेगी, जो अकसर डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त करने के लिए शोधार्थी किसी प्रोफेसर के मार्ग दर्शन में शोध करते हैं। यह ग्रंथ बहुत हद तक वैसा ही है जैसा विष्णु प्रभाकर का 'आवारा मसीहा'। विश्व के तीन महान रचनाकार शरतचंद्र चट्टोपध्याय, प्रेमचंद एवं मैक्सीम गोर्की एक ही कालखंड में हुए थे और तीनों पर अनेक शोधार्थियों ने अलग-अलग दृष्टिकोण से अपने शोध ग्रंथ प्रस्तुत किए हैं। डॉक्टरेट की सनद प्राप्त करने वाले शोधार्थियों के अतिरिक्त अनेक आलोचकों ने भी तीनों साहित्यकारों पर अपने आलोचनात्मक ग्रंथ प्रस्तुत किए हैं, पर डॉ. जैदी के आलोचनात्मक ग्रंथ में कुछ ऐसे नए तथ्य प्रस्तुत किए गए हैं जो प्रेमचंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को जानने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

डॉ. जैदी ने अपने ग्रंथ को हिंदी साहित्य के समर का आख्यान नाम से इंगित किया है। नौ अध्यायों में विभक्त इस ग्रंथ में उनका 'आवश्यक संवाद', प्रतिष्ठित साहित्यकार शंभूनाथ शुक्ल की टिप्पणी तथा उन संदर्भो की सूची भी है जिसके आधार पर डॉ. जैदी ने प्रेमचंद एवं उनके साहित्य का मूल्यांकन किया है। डॉ. जैदी का मानना है कि साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली चीज नहीं है। उसके आगे-आगे चलने वाली 'एडवांस गाइड है।' 'लमही के युग का सफर' अध्याय में डॉ. जैदी ने प्रेमचंद की पारिवारिक पृष्ठभूमि का संक्षिप्त विवरण दिया है। इस विवरण को जाने बिना प्रेमचंद के वास्तविक जीवन और साहित्य को जानने का दावा करना सही नहीं होगा। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर उसके पारिवारिक संबंध, स्थिति का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। समाज और कालखंड का प्रभाव तो

पड़ता ही है। प्रेमचंद के बचपन का नाम धनपत राय था और सिर्फ आठ साल की उम्र में वे मातृहीन हो गए थे। उनके मानस पटल पर माँ की दुखद मृत्यु का गहरा असर पड़ा था। उनके पिता ने सिर्फ दो साल बाद ही दूसरी शादी कर ली थी। उनकी कहानी 'प्रेरणा' में मोहन के रूप में, 'निर्मला' में मंसाराम के रूप में तथा 'कर्मभूमि' में अमरकांत के रूप में मातृहीन बालक की पीड़ा को बखूबी महसूस किया जा सकता है। इस ग्रंथ के अनुसार, प्रेमचंद के पिता मुंशी अजायब लाल ने प्रेमचंद की पहली शादी जमींदार की बेटी से की थी, हालाँकि प्रेमचंद का परिवार औसत निम्न मध्यवर्गीय आमदनी वाले परिवार की श्रेणी में आता था।

कालजयी साहित्यकार मुंशी प्रेमचंद के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके संपूर्ण साहित्य से उनके अपने जीवन को छानकर हर तरह के कथ्य को आसानी से निकाला जा सकता है। उर्दू साहित्यकार 'रतन लाल सरशार' से उनकी गहरी दोस्ती थी। उनकी सारी रचनाएँ उन्होंने बड़ी चाव से पढ़ डाली थीं। पाश्चात्य लेखकों में डिकेंस, इलियट, थैकरे, अनातोले, फ्रांस, गाल्सवर्दी, रोमाँ रोलां, चेखव, गोर्की, तुर्गनेव और टॉलस्टॉय जैसे दिग्गज लेखकों की रचनाओं का प्रेमचंद ने गंभीरता से अध्ययन किया था। 'आलोचकों के चक्रव्यूह और प्रेमचंद' इस ग्रंथ का दूसरा अध्याय है, जिसमें डॉ. जैदी ने स्पष्ट कर दिया है कि तमाम आलोचनाओं के बावजूद प्रेमचंद आज भी जीवित हैं। आगे भी रहेंगे, वह टॉलस्टॉय भी हैं और गोर्की भी और शरतचंद भी, ताराशंकर भी हैं और चेखव भी, इसके बावजूद प्रेमचंद विशुद्ध भारतीय हैं, भारत के गौरव हैं। प्रेमचंद ने अपने साहित्य से 'वसुधैव कुटुंबकम्' को सही मायने में चरितार्थ कर प्रमाणित कर दिया है।

'प्रेमचंद की वैचारिक-क्रांति' अध्याय के अंतर्गत डॉ. जैदी ने प्रेमचंद की कृतियों के माध्यम से रेखांकित किया है कि बुर्जुआ वर्ग साम्यवाद की खाल ओढ़कर लाल सलाम की नौटंकी खेलते हुए जनता को धोखा दे रहा था। साम्यवाद से उनका कोई लेना-देना नहीं था, पर जनता के सामने छद्म रूप में वे साम्यवादी बने रहना चाहते थे।

'प्रेमचंद का रचना-संचार', 'टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों का सपना', 'सेवा-सदन', 'साहित्य की जमीन पर किसानों का संघर्ष', 'राजनीति के विस्मयकारी रंगपटल', 'गोदान : हिंदी साहित्य के समर का आख्यान एवं सेवा सदन : अभी तक सही मूल्यांकन नहीं' अध्याय के अंतर्गत डॉ. जैदी ने प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य पर आलोचकीय दृष्टि से विवेचना की है। उनका मानना है कि अभी तक प्रेमचंद का सही मूल्यांकन नहीं हो पाया है। समग्रता में कहें, तो यह ग्रंथ गागर में सागर है।

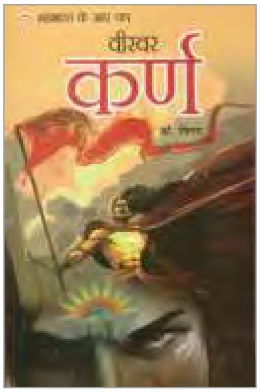

समीक्षक : **दोयल बोस**

लेखक : **डॉ. विनय**

प्रकाशक : डायमंड बुक्स, नई दिल्ली।

पृष्ठ : 168

मूल्य : रु. 150/-

वीरवर कर्ण

महाभारत के मुख्य और अमर पात्र कर्ण का परिचय महान दानवीर के रूप में किया जाता है, लेकिन वास्तव में कर्ण का व्यक्तित्व बहुत ही रहस्यमय है। उनके व्यक्तित्व के हजारों रंग हैं। सूर्य और कुंती के पुत्र कर्ण एक शूरवीर और महान योद्धा होने के साथ-साथ महाभारत के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी भी थे। दृढ़निश्चयी कर्ण ज्ञानी, पुरुषार्थी, दूरदर्शी और नीतिज्ञ भी थे। उनका व्यक्तित्व त्याग, सौहार्द, कृतज्ञता, मित्रता और तपस्या के अद्भुत आयामों का प्रतिमान है और इन्हीं हजारों रंगों और व्यक्तित्वों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है डॉ. विनय की पुस्तक 'वीरवर कर्ण', जिसमें कर्ण से जुड़े गूढ़ रहस्यों को अत्यंत ही खूबसूरती के साथ उद्घाटित किया गया है।

उदाहरणार्थ, द्वापर युग में जन्मे कर्ण का दुखमय और संघर्षपूर्ण जीवन पूर्वजन्मों का फल था। पुराणों के अनुसार, वह पूर्वजन्म में दंबोधव नाम का असुर था, जिसने सूर्यदेव का तप कर वरदान माँगा कि उसे एक हजार कवच मिले। इन कवच पर वही व्यक्ति प्रहार कर सकता था जिसने एक हजार वर्ष तप किया हो। जो भी इन कवचों को भेदने का प्रयास करे तो तत्काल उसकी मृत्यु हो जाए। सूर्यदेव ने दंबोधव को यह वरदान दे दिया। इसलिए दंबोधव को 'सहस्त्रचक्र' भी कहा जाता है। वर पाकर दंबोधव अहंकारी हो गया। उसने ऋषियों और मुनियों में त्राहि-त्राहि मचा दी। उसके आतंक से व्यथित होकर प्रजापति दक्ष की पुत्री मूर्ति ने भगवान विष्णु की आराधना कर उनसे दंबोधव के अंत का वरदान माँगा। तब भगवान विष्णु ने मूर्ति से कहा कि मैं स्वयं सहस्त्रचक्र दंबोधव का अंत करूँगा। कुछ समय बाद मूर्ति ने नर और नारायण नाम के दो जुड़वाँ बालकों को जन्म दिया। नर ने युद्ध में सहस्त्रकवच के 999 कवच काट दिए थे। शेष एक कवच के साथ सहस्त्रकवच ने सूर्य लोक में शरण ली थी। जब द्वापर युग में कर्ण ने जन्म लिया तो वह शेष कवच मौजूद था।

हममें से अधिकांशतः कर्ण के राजकुमारी कुंती के अविवाहित होने के दौरान जन्म की घटना के ही बारे में जानते हैं, परंतु इस पुस्तक में कर्ण के जीवन से जुड़े सभी प्रसंगों का वर्णन है, जिनमें हस्तिनापुर के अस्तबल में रथ हाँकने वाले सारथी अधिरथ और राधा को पुत्र के रूप में कर्ण के प्राप्त होने का संयोग, कौरवों से उसकी भेंट, शिक्षा-दीक्षा या पांचाली के स्वयंवर में षड्यंत्र का शिकार होना, अपने मित्र दुर्योधन के लिए सगे भाइयों के विरुद्ध महाभारत के युद्ध में लड़ना, सभी घटनाओं

को लेखक ने बहुत ही तर्क और शास्त्र सम्मत तरीके से वर्णित किया है। यह पुस्तक प्रेम, द्वेष, शौर्य और प्रतिशोध की गाथा महाभारत के विविध पात्रों एवं उनसे जुड़ी कथा-उपकथा के अनेक अनछुए पहलुओं पर प्रकाश डालती है। साथ ही, कर्ण के जीवन वृत्तांत को बहुत ही सुंदर ढंग से औपन्यासिक शैली में चित्रित करने का प्रयास है।

एक राजकुमार के रूप में जन्म लेने वाले कर्ण के अतीत से दुनिया अनजान थी। एक सारथी की संतान के रूप में लालन-पालन होने के कारण उसे सूत पुत्र माना गया और कदम-कदम पर अपमानित होना पड़ा। लेकिन धर्मतत्व का ज्ञान रखने वाला कर्ण अंतर्मन से आहत होने के बावजूद भी हमेशा अपने अपमानों को सहर्ष स्वीकार करने का साहस रखता है। यहाँ तक कि अपनी जन्मदायिनी माँ की सच्चाई सामने आने पर भी वह एक कर्तव्यनिष्ठ, समर्पित और संजीदा व्यक्ति के रूप में सामने आता है। मृत्यु के आखिरी क्षणों में भी कर्ण ब्राह्मण वेशधारी भगवान श्रीकृष्ण को अपने दो स्वर्णयुक्त दाँतों का दान देता है और एक साधारण मनुष्य के पद से ऊपर उठकर एक आदर्श और महान दानवीर के रूप में प्रस्तुत होता है।

लेखक ने सभी घटनाओं का इतना सजीव वर्णन किया है कि इन्हें पढ़ते हुए महाभारत काल के सभी पात्र आँखों के सामने स्वयं ही परिकलित होने लगते हैं। महाभारत के सभी पात्र अपने व्यक्तित्व में मानवीय, विचित्र, उत्तेजक और प्रेरणाप्रद अनुभवों से पूर्ण हैं। कभी ये पात्र अपने व्यक्तित्व के सर्वोच्च शिखर को स्पर्श करते दिखते हैं तो कभी स्वाभाविक और सामान्य मनुष्य के रूप में भी सामने आते हैं। महाभारत के महासमर का इतना विस्तृत और बेहतरीन वर्णन दुर्लभ ही देखने को मिलता है, जो इस पुस्तक में किया गया है।

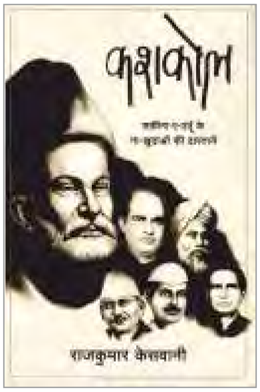

समीक्षक : **लक्ष्मीनारायण मित्तल**

लेखक : **राजकुमार केसवानी**

प्रकाशक : मंजुल पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृष्ठ : 294

मूल्य : रु. 350/-

कशकोल सफीना-ए-उर्दू के ना-खुदाओं की दास्तानें

आमतौर पर हिंदी-उर्दू विवाद को सांप्रदायिक रंग दे दिया जाता है, परंतु भाषा वैज्ञानिक दोनों में कोई भेद नहीं मानते। केवल लिपि का अंतर है। इस दृष्टि से उर्दू अदब की एक बेहतरीन किताब राजकुमार केसवानी ने 'कशकोल' नाम से देवनागरी में लिखी है। उर्दू शायरी के लिए केसवानी एक जाना-पहचाना नाम है। उनकी पहचान एक कवि, एक लेखक, एक पत्रकार के रूप में स्थापित है। उन्होंने फारसी से उर्दू में अनुवाद भी किया है। इस पुस्तक में उर्दू अदब के 13 किरदारों की जिंदगी के जाने-अनजाने पहलुओं पर प्रकाश डाला है। इसमें मिर्जा ग़ालिब, मुंशी नवल किशोर, आगा हश्र कश्मीरी, पंडित रतननाथ सरशाह, मिर्जा हादी, इस्माइल मेरठी, इब्ने सफी, नादिर का कोरवी, शौकत थानवी, कन्हैया लाल कपूर, फिक तौंसवी, मजाज और कतली शिफ़ाई के कृतित्व और व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

कशकोल का मतलब उर्दू में 'शिक्षापात्र' से होता है। फकीर इसमें घर-घर जाकर अपनी भिक्षा एकत्रित करता है। वह उसकी अमूल्य पूँजी है। इसी प्रकार लेखक ने इस पुस्तक में इन 13 फ़नकारों की सर्वश्रेष्ठ कृतियों से हमारा परिचय करवाया है। उनके जीवन के अनकहे पक्ष को भी बखूबी उजागर किया है। जिस कवितामय शैली में इनके जीवन के पक्षों को प्रकट किया गया है, उससे केसवानी का गद्य में लिखा आलेख मानो शायरी का रूप ले लेता है। ग़ालिब से लेकर आधुनिक काल के कन्हैया लाल कपूर, शौकत थानवी और फ़िक्र तौंसवी तक को शामिल किया गया है। मिर्जा ग़ालिब की चर्चा करते हुए लेखक उनके जन्मदिन 27 दिसंबर, 1797 से बात शुरू करते हैं। किस प्रकार अभावों में उनका जीवनयापन हुआ, इसका भी जिक्र है। शुरू में ग़ालिब पर फारसी का प्रभाव था। लेखक कहता है कि शुरू में ग़ालिब पर फारसी जबान का जादू इस कदर सवार था कि वे और किसी जबान को उसके आगे गिनते ही न थे। बाद में वे उर्दू के प्रभाव में आए और फिर कहते हैं—

हैं और भी दुनिया में सुखनवर बहुत अच्छे
कहते हैं कि ग़ालिब का है अन्दाज-ए-बयाँ और

कतील शिफाई को लेखक पहाड़ी के खुश्क सीने पर उबलता हुआ एक चश्मा बतलाते हैं। कतील शिफाई 1919 को हरिपुर हजारा में जन्मे थे जो आज पाकिस्तान में है। पठान होकर भी उन्होंने पश्तो में न लिखकर उर्दू को अपनाया। देश के ताजा हालात पर लिखते हुए कतील कहते हैं—

खुला है झूठ का बाजार, आओ सच बोलें
न हो बला से खरीदार, आओ सच बोलें।

मुंशी नवल किशोर एक प्रकाशक भी थे और उन्होंने अपने जमाने में उर्दू-अरबी-फारसी जैसी भाषाओं की बहुत बेहतरीन पुस्तकें भी छापी थीं। आगा हश्र कश्मीरी को लेखक ने हिंदुस्तानी शेक्सपियर कहा है। रतन नाथ सरशार भारतेन्दु के समकक्ष थे। उन्होंने 'अवध' अख़बार भी निकाला। इस्माइल मेरठी आधुनिक युग के अज़ीम शायर रहे हैं। सफ़ी अपने जासूसी उपन्यासों के लिए जाने जाते हैं। शौकत थानवी, रेडियो, टी.वी. और फिल्मों से जुड़े रहे और बँटवारे के बाद पाकिस्तान चले गए। इस एक पुस्तक में इतनी सारी सामग्री है कि पढ़कर ही आनंद लिया जा सकता है।

मनवा रे...!

ज्योत्स्ना प्रवाह

प्रेम दुर्लभ अनुभूति है जिसे शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। इसका न तो कोई पक्ष है और न ही स्वरूप। इस पुस्तक में प्रेम की संपूर्णता और व्यापकता पर बात की गई है। 22 अध्यायों में संकलित यह पुस्तक प्रेम और मोह में सूक्ष्म अंतर को उद्घाटित करती है।

लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।

पृ. 136; रु. 350.00

छोटी-छोटी बातें

स्वामी अनुभवानंद

संकलन : **उषा गाडोदिया**

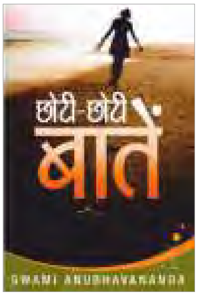

यह पुस्तक स्वामी अनुभवानंद की सर्वाधिक लोकप्रिय प्रवचनमालाओं में से एक है। महाभारत तथा श्रीमद्भगवद्गीता के विभिन्न प्रसंगों में से स्वामी अनुभवानंद ने कुछ ऐसी बातों की विवेचना की है, जो देखने, सुनने और समझने में बहुत छोटी जान पड़ती हैं, लेकिन इनमें सफल जीवन के बड़े रहस्य छिपे हैं।

इंद्रा पब्लिशिंग हाउस, भोपाल।

पृ. 108; रु. 145.00

न समझे जाने का दर्द

नामदेव

इस कविता-संग्रह में 70 कविताएँ हैं जो समाज में व्याप्त बुराइयों और विषैले मन पर कटाक्ष करती नजर आती हैं। आजादी के बाद के भारत में जातिवाद व विकास पर प्रश्न उठाती हैं। साथ ही, स्वार्थपरक दुनिया में वेदना, भरोसा, दंश जैसे मुद्दों पर प्रकाश डालती हैं।

रश्मि प्रकाशन, लखनऊ।

पृ. 108; रु. 175.00

कोविड-19 : नोवल कोरोना वायरस, एक अदृश्य शत्रु

यादराम यादव

यह पुस्तक में वर्तमान में फैली वैश्विक महामारी 'कोविड-19' के बारे में जागृति पैदा करने के उद्देश्य से लिखी गई है। इससे संबंधित लगभग सभी सवालों का जवाब देने की कोशिश की गई है। साथ ही, विश्व स्वास्थ्य संगठन और भारत सरकार ने इससे निपटने के लिए कौन-कौन से कदम सुझाए और उठाए हैं, इसकी जानकारी भी मुहैया कराई गई है।

विद्या-मंच, दिल्ली।

पृ. 88; रु. 100.00

कोमा एवं अन्य कहानियाँ

जवाहर चौधरी

इस संग्रह में 15 कहानियाँ हैं। स्त्री अस्मिता पर हो रहे लगातार प्रहार पर महिलाओं को जागृत करने के उद्देश्य के लिखी गई पुस्तक की शीर्षक कहानी 'कोमा' है। इसके अलावा 'गोटिया', 'आगी', 'सुरंग', 'सियार', 'पिंजरे में लोग', 'पागल' जैसी उद्देश्यपूर्ण कहानियाँ पाठकों को विचार मंथन के लिए प्रेरित करती हैं।

बोधि प्रकाशन, जयपुर।

पृ. 112; रु. 150.00

किस्सा चमचम परी और गुड़ियाघर का

प्रकाश मनु

यह जिंदादिल चरित्रों से भरा फंतासी उपन्यास है जो प्रेमरस से सराबोर है। इसमें मित्रता की बड़ी प्रसन्न और मनोहारी छवियाँ हैं। उपन्यास के कथा-विन्यास में मजेदार किस्से हैं जो बालमन को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। चरित्रों की भाव-भंगिमाएँ उभरकर सामने आती हैं।

चिल्ड्रन बुक टेंपल, दिल्ली।

पृ. 176; रु. 350.00

काशी से उज्जैन

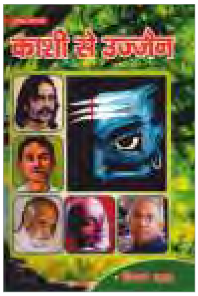

विनय दास

यह पुस्तक एक यात्रा संस्मरण है जिसमें लेखक ने काशी से उज्जैन तक के तमाम भ्रमण विशेषकर साहित्यिक तीर्थयात्राओं को ध्यान में रखकर किए हैं। यात्रा के केंद्र में हमारी साहित्यिक विरासतें व रचनात्मक धरोहरें हैं। इसमें कालिदास से कबीर और भारतेन्दु हरिश्चंद्र से होते हुए आधुनिक नामचीन साहित्यकारों के संघटन स्थलों का जिक्र है।

उद्योग नगर प्रकाशन, गाजियाबाद।

पृ. 152; रु. 250.00

झारखंड के अमर क्रांतिकारी बिरसा मुण्डा एवं सिद्धू-कान्हु

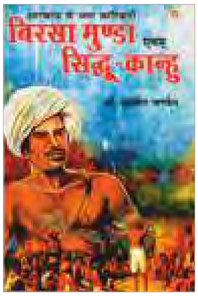

डॉ. सुस्मिता पाण्डेय

छोटानागपुर के ज्ञात-अज्ञात स्वतंत्रता प्रेमियों को जिन्होंने अपने देश की आजादी की खातिर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया, यह पुस्तक ऐसे क्रांतिकारियों को समर्पित है। इसमें बिरसा मुण्डा एवं सिद्धू-कान्हू का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। उन्होंने न केवल अग्रेजों की दासता न स्वीकारते हुए संघर्ष किया, बल्कि वे देश और अपने अधिकारों के प्रति आमजन को जागरूक करने में सफल हुए।

डायमंड बुक्स, नई दिल्ली।

पृ. 216; रु. 250.00

महीयसी पन्ना

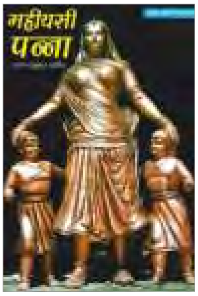

तरुण कुमार दाधीच

यह बाल खंड काव्य पन्ना धाय के त्याग को समर्पित है, जिन्होंने मेवाड़ राजवंश के कुँवर उदय सिंह की रक्षा करते हुए अपने पुत्र का बलिदान कर दिया था। 'सरसी' छंद में लिखे इस खंड काव्य में मंगलाचरण सहित 216 पदों को सात खंडों में विभक्त किया गया है। यह बालकों में कर्तव्यनिष्ठा, देश-प्रेम, स्वामीभक्ति, करुणा जैसे जीवन मूल्यों के विकास में सहायक सिद्ध होगी।

अनुपम प्रकाशन, उदयपुर।

पृ. 64; रु. 90.00

अब ख़्वाब नए हैं

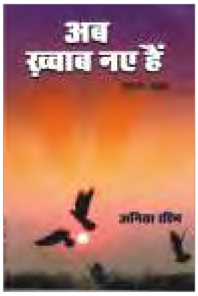

(काव्य-संग्रह)

अनिता रश्मि

इस काव्य संकलन की कविताओं में जीवन और प्रकृति के अनेक रंग-रूप, ध्वनियाँ व छवियाँ हैं। ये कविताएँ शांत स्थिर क्षणों में सशक्त, स्वतः स्फूर्त प्रवाह मात्र नहीं हैं, अपितु इनका वर्तमान से, उसकी विद्रूपताओं से, उसके जटिल और क्रूर पक्ष से भी संबंध रखती हैं। इसमें 86 कविताएँ संकलित हैं।

रवीना प्रकाशन, दिल्ली।

पृ. 154; रु. 370.00

फेसबुक लाइव और ज़िंदगी का दी एंड

(लघुकथा संग्रह)

मार्टिन जॉन

इस पुस्तक में 75 लघुकथाएँ संगृहीत हैं जो वर्तमान व्यवस्था और उसके अंतर्विरोधों को समझने में अहम भूमिका निभाती हैं। कथाएँ पढ़ने पर पता चलता है कि तमाम प्रगतिशीलता, आधुनिकता, सूचनासंपन्नता और उन्नत तकनीक के सहारे कथित रूप से सुख-सुविधापूर्ण जीवनयापन करने वाले हम मनुष्य अपनी ही अंदरूनी सच्चाई से कितने अनजान हैं।

रवि प्रकाशन, लखनऊ।

पृ. 120; रु. 175.00

नूतन भाषा-चंद्रिका

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

कोमल मन पर भाषा की जो छाप पड़ती है, वह उसके व्यक्तित्व का अंग बन जाती है। इसलिए भाषा में व्याकरण की भूमिका अहम होती है। हिंदी पट्टी के विद्यार्थियों की हिंदी व्याकरणिक अशुद्धियों को दूर करने के उद्देश्य से यह पुस्तक कारगर साबित हो सकती है।

अयन प्रकाशन, नई दिल्ली।

पृ. 148; रु. 150.00

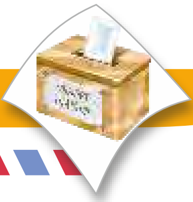

पत्रिका मिली, हर बार की तरह बेहतर संयोजन-संपादन! वर्तमान स्थितियाँ जहाँ मन झुलसा रही हैं, ऐसे में इस पत्रिका का संपादकीय लेख आनंदमग्न कर गया। संपादकीय लेख 'शोध और हमारी शोध दृष्टि' निश्चित तौर पर खुले मन और मस्तिष्क से वृहत परिदृश्य में लिखा गया बेहद सार्थक लेख है। आदरणीय गोविंद सर के लेखन से पहले भी रू-ब-रू और प्रभावित होती रही हूँ। एक वाक्य में कहूँ तो समाज को ऐसे दृष्टिकोण की बहुत जरूरत है। बेहतरीन लेख के लिए सर को साधुवाद!

आपको पुनः बधाई!

–आरती स्मित

'पुस्तक संस्कृति' का असम विशेषांक पढ़ा। पूर्वोत्तर के प्रमुख राज्य पर केंद्रित यह अंक विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि पूर्वोत्तर के संबंध में भारत की मुख्य भूमि के पाठकों को सीमित जानकारी है। इन प्रदेशों की संस्कृति, प्रकृति, परंपराएँ सम्मोहित करती हैं। प्रो. गोविंद शर्मा जी के संपादकीय से लेकर लेख, कहानी, पुस्तक समीक्षा सभी प्रभावित करती हैं। 'पूर्वोत्तर भारत, हिंदी और महात्मा गांधी' शीर्षक से डॉ. अकेला भाई द्वारा लिखित लेख यात्रा-वर्णन की सरसता लिए है। असम की परंपराओं, पुस्तकालय आदि की जानकारी भी उपयोगी लगी। पुस्तक समीक्षा तो सदा ही इस पत्रिका का सर्वाधिक सार्थक भाग होता है। कुशल संपादन के लिए आपको और आपकी पूरी टीम को बधाई!

शुभकामनाओं सहित,

–डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

पत्रिका का 'दिव्यांग विशेषांक' पढ़ा। अच्छा अंक निकाला है। इन लोगों की समस्याओं पर ध्यान जाना ही चाहिए। अरविंद कुमार सिंह ने भारतीय रेल द्वारा इनके कामों का अच्छा लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है।

–प्रेमपाल शर्मा

'पुस्तक संस्कृति' का मई-जून, 2021 का 'दिव्यांग विशेषांक' मिला, आभारी हूँ। 'विश्व का सबसे बड़ा वर्चुअल पुस्तक महाकुंभ' शीर्षक से न्यास द्वारा 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' को मुख्य थीम बनाकर किया गया पुस्तक मेला जितना सफल रहा है, उतनी ही प्रभावी उसकी रिपोर्टिंग आपने इस अंक में की है। आपको बधाइयाँ देता हूँ।

'दिव्यांगों' को केंद्र में रखकर इतनी प्रामाणिक और विविधमुखी सामग्री इस विशेषांक में आपने दी है कि यह 'संग्रहणीय' बन गया है। डॉ. संध्या कुमारी, श्री दीपक पाण्डेय, अंकुर पारीक और डॉ. किरन जोशी के आलेखों ने प्रभावित किया है। इस महत्वपूर्ण विशेषांक के लिए आप के साथ ही यशस्वी अध्यक्ष प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा एवं निदेशक श्री युवराज मलिक का मैं हृदय से अभिनंदन करता हूँ।

आदर सहित,

–डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका का मई-जून, 2021 अंक प्राप्त हुआ। पत्रिका के सभी अंकों की जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम है। पत्रिका के प्रधान संपादक प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा का संपादकीय 'शोध और हमारी शोध दृष्टि' बहुत से विषयों पर नए-नए दृष्टिकोण से सोचने और शोध करने लिए प्रोत्साहित करती है। प्रस्तुत संपादकीय एक महत्वपूर्ण लेख है, जो नए शोधकर्ताओं को सोचने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सुझाव देता है। आज ऐसे मौलिक शोध की जरूरत है जो समस्त मानव को सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अवसर प्रदान कर सके। कोरोना ने तो मानव को बहुत सारे बिंदुओं पर शोध करने लिए विवश तक किया है और भेदभावपूर्ण समाज से अलग नई शोधपरक दृष्टि को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया है। ऐसे ज्ञानवर्धक संपादकीय के लिए उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद!

दिव्यांगों पर प्रकाशित समस्त लेखों के लिए संपादक पंकज चतुर्वेदी को विशेष धन्यवाद। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 पर आधारित रिपोर्ट 'विश्व का सबसे बड़ा वर्चुअल पुस्तक महाकुंभ' सराहनीय है।

–डॉ. मंजू देवी

आपकी राय का स्वागत है

'पुस्तक संस्कृति' पत्रिका में प्रकाशित सामग्री पर आपके सुझाव, राय का सदैव स्वागत है। देश-दुनिया के साहित्यिक-सांस्कृतिक परिवेश, प्रकाशन जगत की गतिविधियों पर आपकी सम्मति के लिए इस स्थान पर आपके पत्र/ईमेल की प्रतीक्षा है।

संपर्क :
संपादक, पुस्तक संस्कृति,
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन,
5, इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-2,
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
दूरभाष : 267-07758/07876/07700
ईमेल : editorpustaksanskriti@gmail.com

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की द्विमासिक पत्रिका

पुस्तक संस्कृति

के सदस्य बनें

सदस्यता प्रपत्र

नाम : ______________________________

पता : ______________________________

जिला : __________ शहर __________ राज्य __________ पिन कोड __________

फोन : ______________ ई-मेल : ______________

मैं राशि रु. (अंतर्देशीय : 225/- रु.; अंतर्राष्ट्रीय : 1000/- रु.) __________ वार्षिक सदस्यता हेतु (बैंक ड्राफ्ट/नगद) __________ ड्राफ्ट संख्या __________ बैंक एवं शाखा द्वारा जारी __________ भेज रहा/रही हूँ (संलग्न)।

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट द्वारा (नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया के पक्ष में देय), सदस्यता प्रपत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेजें :

संपादक
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, 5 नेहरू भवन, वसंत कुंज, सांस्थानिक क्षेत्र, फेज-2,
नई दिल्ली-110070
ई-मेल : editorpustaksanskriti@gmail.com
दूरभाष : 011-26707758/26707876

ऑनलाइन शुल्क भेजने का विवरण इस प्रकार है :

For	National Book Trust, India
Bank	Canara Bank
Branch	Vasant Kunj, New Delhi-110070
A/c No.	3159101000299
IFSC Code	CNRB0003159
MICR Code	110015187

शुल्क भेजने के पश्चात् कृपया फोन अथवा पत्र द्वारा सूचना अवश्य दें।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के कुछ नए प्रकाशन

एक था मसीहा

देवेंद्र खंडेलवाल

चित्र : **राजकुमार घोष**

12 से 14 वर्ष के पाठकों के लिए

यह नाट्य पुस्तक मात्र नहीं है, वरन् इसमें महात्मा गांधी का आमजन यहाँ तक कि उनकी पत्नी कस्तूरबा से भी सच्चाई और निडरता से जीवन की कठिनाइयों को सहज बनाने की वकालत की गई है। छोटे-छोटे प्रसंगों को मंच के माध्यम से दर्शाकर पाठकों में कौतूहल भरने का काम पुस्तक करती है।

पृ. 10; रु. 80.00

प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में भौतिकशास्त्र

नारायण गोपाल डोंगरे,
शंकर गोपाल नेने

प्रस्तुत पुस्तक में मुख्य रूप से प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा का, विशेष रूप से भौतिक शास्त्र की अवधारणाओं का, आधुनिक भौतिक शास्त्र में प्रतिपादित वैज्ञानिक विचारों के साथ तुलनात्मक तथा समन्वयात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। न्यूटन के कर्मसूत्रों व गतिसूत्रों समेत लगभग सभी आधुनिक भौतिक शास्त्रीय विचारों पर वैशेषिक शास्त्र में विचार किया गया है।

पृ. 194; रु. 235.00

अरविंद तिवारी : संकलित व्यंग्य

अरविंद तिवारी

इस संकलन में प्रस्तुत 40 रचनाओं में व्यंग्य के प्रचलित रूप यथा उपहास, कटाक्ष, आक्षेप, विनोद वचन, विडंबना आदि शामिल हैं। लोक जीवन और भोगे हुए यथार्थ की विषयवस्तु वाले ये व्यंग्य भाषा की यथासंभव आम बोलचाल की शैली में हैं। हम चोरों के आभारी हैं, मास्टरजी जिंदा हैं, साहित्य की बैलेंस शीट, ईर्ष्या की सुनामी जैसे स्तरीय व्यंग्य पुस्तक में संगृहीत हैं।

पृ. 122; रु. 145.00

चलो खेलों की ओर

कनिष्क पाण्डेय

चित्र : **अरूप गुप्ता**

यह पुस्तक बहुत सहज भाव से अपने पाठक को संदेश देती है कि किस तरह खेल-कूद अनुशासन सिखाता है और अनुशासन जीवन में आनंद लाता है। खेल खेलने से दिमाग की भी कसरत हो जाती है। पुस्तक में बताया गया है कि खेल कोई भी हो, उसमें जबरदस्त ऊर्जा, खेल भावना, एकाग्रता और कड़ी प्रतिबद्धता की आवश्यकता होती है और इनसे जीवन मूल्य का उदय होता है।

पृ. 112; रु. 130.00

खोका

मोपिया बसु

अनुवाद : **शैलेन्द्र प्रताप सिंह,**
धीरेन्द्र प्रताप सिंह

चित्र : **पार्थ सेनगुप्ता**

यह पुस्तक कहानियों का संग्रह है—कुछ छोटी, कुछ बड़ी, जिसका नायक खोका है, जो मात्र तीन वर्ष की उम्र में अपने पिता को खो चुका है। उसका जीवन रोमांचक कारनामों और उत्साह से भरा हुआ है। यह पुस्तक हमें अतीत से जोड़ने के साथ-साथ हमारे देश के इतिहास के निर्णायक दौर की स्मृतियों को भी सहेजती है।

पृ. 142; रु. 90.00

बिस्मिल्लाह खाँ

शिवेंद्र कुमार सिंह

चित्र : **इस्माईल लहरी**

भारतीय शास्त्रीय संगीत और संस्कृति की फिजा में शहनाई के मधुर स्वर घोलने वाले भारत रत्न बिस्मिल्लाह खाँ की जन्मस्थली और कर्मस्थली बनारस थी। यह पुस्तक संगीत के प्रति उनकी लगन और श्रद्धा को दर्शाती है और उनके जीवनयात्रा से रू-ब-रू कराती है।

पृ. 32; रु. 70.00

कोरोना वॉरियर और सिंबा

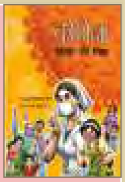

अनिता भटनागर जैन

चित्र : **पार्थ सेनगुप्ता**

इस पुस्तक में दो बाल कहानियाँ—कोरोना वॉरियर और सिंबा हैं। कोरोनाकाल पर आधारित कहानी कोरोना वॉरियर, जिसमें एक नर्स अपने परिवार से काफी लंबे समय बाद मिलती है। दूसरी कहानी एक कुत्ते की है जो इस महामारी में काफी समय के बाद अपनी मालकिन से मिलता है।

पृ. 32; रु. 70.00

nbt.india
एकः सूते सकलम्

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070.
फोन : 011-26707761 ● **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in
वेबसाइट : www.nbtindia.gov.in